शिवानन्द आत्मकथा

शिवानन्द-आत्मकथा

Autobiography of Swami Sivananda
का अविकल अनुवाद

लेखक
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादक
श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९ १९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रथम हिन्दी संस्करण १९५९
सप्तम हिन्दी संस्करण : २०१५
अष्टम हिन्दी संस्करण : 30%

(१,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

ISBN 81-7052-127-0 HS 5

PRICE: 120/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द
द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस,
पो. शिवानन्दनगर-२४९ १९२, जिला टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय

सन्त का जीवन सभी के लिए आदर्श है, जिसका अनुगमन कर सभी अपने जीवन को उन्नत बना सकते हैं। इस पुस्तक में दिव्य जीवन के पाठ खोल कर रख दिये गये हैं। मनुष्य धर्मग्रन्थों तथा उपनिषदों के अध्ययन से आध्यात्मिक सत्यों की प्राप्ति के लिए कितना भी प्रयास क्यों न करे; परन्तु अपने दैनिक जीवन में उन सत्यों का

साक्षात्कार करने के लिए उसमें तभी प्रेरणा, उत्कण्ठा तथा पिपासा की जागृति होती है, जब वह किसी व्यक्ति के जीवन में उन सत्यों को साकार-उन आदर्शों को मूर्त हुआ देख लेता है।

यह प्रेरणात्मक पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति करेगी।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादकीय

स्वामी शिवानन्द जी जैसे महर्षि के जीवन में गीता एवं उपनिषदों की जैसी स्पष्ट व्याख्या जीवन्तरूपेण मिलती है वैसी अन्यत्र कहीं भी मिल नहीं सकती। यही कारण - कि अध्यात्म-मार्ग पर चलने वाले धीर साधक सर्वप्रथम सन्तों एवं महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सम्पूर्ण जीवन के रहस्य को समझने का प्रयास करते हैं।

स्वामी जी का व्यक्तित्व सम्पूर्ण योग का मूर्त स्वरूप है। उनके जीवन में कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग एवं ज्ञानयोग वीणा के विभिन्न स्वरों की तरह लयभूत हो कर ऐसे आत्म-संगीत का निर्माण करते हैं, जिसकी मोहक तान ने हजारों साधकों के दय में दिव्य जीवन का जागरण किया तथा विशुद्ध आनन्द के असीम सागर को लोड़ित किया है।

हिन्दी भाषा-भाषी पाठकों की सेवा हेतु मैंने पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की मूल अँगरेजी पुस्तक Autobiography of Swami Sivananda का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। आशा है, इस पूजा को सभी स्वीकार करेंगे।

-अनुवादक

भूमिका

जब मुझे श्री स्वामी शिवानन्द जी की इस आत्मकथा की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई, तब मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा। मैं सोचने लगा (शायद दूसरे लोग भी मेरी तरह सोचते होंगे) कि गुरुदेव के साथ वर्षों तक रहने के बावजूद उनके जीवन की जो बातें मैं उनसे या किसी दूसरे स्रोत से नहीं जान पाया था, वे सारी बातें अब इस पाण्डुलिपि के माध्यम से विस्तार से जानने को मिल जायेंगी। परन्तु जब मुझे इसमें उन सब बातों की झलक भी देखने को नहीं मिली, तो मुझे अत्यन्त आश्चर्य (निराशा नहीं) हुआ। पाण्डुलिपि को एक ओर रख देने के बाद और गुरुदेव से जिस ढंग से सोचने का प्रशिक्षण मुझे मिला था, उस ढंग से सोचने पर मुझे पता चला कि उनकी इस चुप्पी का एक गहरा

अर्थ था। एक बात जो उनमें नहीं है और जिसे वह किसी दूसरे व्यक्तित्व में भी नहीं देखना चाहते, वह है निरुद्देश्य उत्सुकता तथा व्यर्थ का वार्तालाप । तमिल क्षेत्र के सन्त तिरुवल्लुवर (जिन्हें कवि ही नहीं, विधिकर्ता भी माना जाता है) ने अपने अमर काव्य 'तिरुक्कुरल' के तीसरे अध्याय में गृहस्थों के लिए नियमों का उल्लेख करते हुए 'अराथुप्पल' (धर्म) परिच्छेद के अन्तर्गत 'पयानिला सोल्लामई' अर्थात् 'व्यर्थ बातों को व्यक्त न करना' पर विस्तार से चर्चा की है। इस अध्याय के आठवें छन्द में कवि ने लिखा है- "जो धीमान् उपयोगी और अनुपयोगी बातों का अन्तर समझ लेते हैं, वे कभी भी व्यर्थ शब्दों को व्यक्त नहीं करते।" स्वामी शिवानन्द ने इसी नियम को अपने जीवन में अपनाया है और भूल कर भी इसकी उपेक्षा नहीं की। उनके अनुसार अपने जीवन की उन घटनाओं के बारे में लिखना व्यर्थ है जो पाठकों की आध्यात्मिक उन्नति में प्रत्यक्ष रूप से सहायक नहीं होतीं। यही कारण है कि इस पाण्डुलिपि में इस बारे में कोई चर्चा नहीं की गयी कि क्यों वे उन दिनों समुद्र पार करके भारत से मलाया गये, जब रूढ़िवादी ब्राह्मण-परिवार समुद्र के पार की यात्रा को धर्म-विरोधी समझते थे। पाठकों को यह तो विदित ही होगा कि स्वामी शिवानन्द एक अत्यन्त रूढ़िवादी ब्राह्मण-परिवार के सदस्य थे। इस बारे में भी उन्होंने कोई चर्चा नहीं की कि क्यों वे मलाया की अत्यन्त अर्थकर (lucrative) नौकरी छोड़ कर संन्यासी का जीवन व्यतीत करने के लिए भारत लौट आये। उनके अनेक भक्त एवं शिष्य यह भी जानना चाहते हैं कि क्या वे गृहस्थ थे और यदि यह बात सच है, तो उनका परिवार कहाँ है? उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता के प्रति सम्मान की भावना रखने वाले लोगों में जो बहुत कम उत्सुक हैं, वे भी यह जानना चाहते हैं कि उन्होंने एक नये साधक के रूप में हिमालय में क्या-क्या साधना की और उनकी तपस्या का क्या स्वरूप था। वे सोचते हैं कि सही दिशा में अशिथिल और कठिन परिश्रम किये बिना स्वामी शिवानन्द के लिए आध्यात्मिक उत्कर्ष की ऊँचाइयों पर पहुँचना सम्भव नहीं था। मानव से महामानव बनने के लिए उन्होंने क्या-क्या किया, इस बारे में उन्होंने अपने भक्तों को कुछ भी नहीं बताया है।

निःसन्देह यह चुप्पी किसी संकोच के कारण नहीं है। स्वामी शिवानन्द जब कभी अपने बारे में कुछ कहने लगते हैं, तो अपने ऊपर वह किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाते । वह निर्भीकता के साथ अपनी उपलब्धियों की चर्चा करते हैं और इस बात की चिन्ता नहीं करते कि लोग उन्हें आत्मश्लाघी कहेंगे। अपने जीवन की कुछ घटनाओं के बारे में उनकी चुप्पी का कारण केवल यही है कि वह ऐसा मानते हैं कि उनका वर्णन करने से दूसरों को कोई लाभ नहीं होगा।

उनके मलाया जाने की ही बात करें। मान लें कि वह वहाँ इसलिए गये क्योंकि वह कोई साहसिक कार्य करना चाहते थे, या उनमें दूरस्थ स्थानों को देखने की इच्छा थी, या वह मलाया में कार्यरत उन भारतीय श्रमिकों के हित में कुछ कार्य करना चाहते थे, जो अच्छी आय तथा सुखद जीविका के लालच में वहाँ पहुँचे थे और जिनका शोषण किया जा रहा था। अब इस जानकारी से आध्यात्मिक साधकों को अपनी साधना में कोई सहायता नहीं मिलेगी। और यही कारण है कि स्वामी शिवानन्द ने अपनी आत्मकथा में इस बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा।

यदि किसी विशेष परिस्थिति में जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन आ जाने के कारण वह संन्यासी बनने के लिए आतुर हो उठे थे और इसीलिए वह भारत भागे चले आये थे, तो यह जानकारी भी साधकों के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। यह आवश्यक नहीं है जो कोई भी संसार का त्याग करना चाहता है, उसे उसी प्रकार के अनुभव होंगे जो अनुभव स्वामी शिवानन्द को हुए थे। जब अप्रतिरोध्य दैवी पुकार सुनायी पड़ेगी, तब सभी साधक सहज ही उस ओर खिंचे चले आयेंगे। इसलिए यह बताने से कोई लाभ नहीं है कि क्यों उन्होंने संसार का त्याग किया।

इसी प्रकार की अन्य बातों (जिनमें उनकी साधना के स्वरूप से सम्बन्धित बात भी सम्मिलित है) का भी यही उत्तर है। यह याद रखना चाहिए कि अनेकानेक पुस्तकों (और स्वामी शिवानन्द ने भी इस प्रकार की अनेक पुस्तकें लिखी हैं) में यह बात स्पष्ट की गयी है कि साधना बिलकुल व्यक्तिपरक होती है और उसका सम्बन्ध केवल उस व्यक्ति-विशेष से होता है जो उस साधना को कर रहा होता है, किसी अन्य साधक से उसका सम्बन्ध नहीं

होता। सभी साधनाओं का उद्देश्य साधक के मन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करना होता है। लेकिन किसी का मन उसी का मन होता है, किसी दूसरे का नहीं। गत और वर्तमान जन्मों के कर्मों के परिणाम उसमें प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रत्येक मन को एक विशेष ढंग से साधना होता है और वह मन जिसका है, वही व्यक्ति अनुभव और अभ्यास के आधार पर उस ढंग को जान सकता है। अतः यदि स्वामी शिवानन्द ने अपने मन को नियन्त्रित करने में आने वाली बाधाओं के बारे में विस्तार से लिखा भी होता, तो भी वह उनके व्यक्तिगत इतिहास से अधिक और कुछ न बन पाता और उससे किसी भी व्यक्ति को (भले ही वह उन बाधाओं की जानकारी से लाभ उठाने के लिए उत्सुक रहा हो) कोई लाभ नहीं मिल पाता। फिर भी, यह कहना उचित न होगा कि इस बारे में स्वामी शिवानन्द बिलकुल चुप रहे हैं। इस पाण्डुलिपि में यत्र-तत्र उन्होंने लिखा है- "तीर्थयात्रा करते समय मेरे द्वारा भिक्षुक के रूप में व्यतीत किये गये जीवन से मुझे बहुत सहायता मिली है। वह जीवन मेरे लिए अपने व्यक्तित्व में तितिक्षा, समदृष्टि और सुख-दुःख में सन्तुलित बने रहने के गुणों का विकास करने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। उस अवधि में मुझे कई महात्माओं के दर्शन हुए और उनसे मुझे महत्त्वपूर्ण बातें जानने को मिलीं। कभी-कभी मुझे भूखे पेट मीलों चलना पड़ता था। लेकिन मुस्कराते हुए मैंने सारी कठिनाइयाँ झेलीं।"

निश्चित ही यह एक अत्यन्त संक्षिप्त विवरण है; लेकिन इससे बहुत-कुछ जानने को मिलता है। इससे यह पता चलता है कि उनकी तपस्या का स्वरूप क्या रहा होगा। अपनी समचित्तता को बनाये रखते हुए खाली पेट मीलों चल पाना आसान बात नहीं है। यही सच्ची साधना है। जिसने भूखा रहना जाना न हो, किसी सुखद स्थान में बैठ कर जो माला-पर-माला फेरता रहा हो, ऐसे साधक की अपेक्षा उनकी जैसी साधना करने वाला कई गुणा श्रेष्ठ है।

पुस्तक में एक जगह उन्होंने लिखा है-"आत्म-साक्षात्कार एक अतीन्द्रिय अनुभव है। परम सत्य का साक्षात्कार कर लेने वाले आत्मज्ञानी महापुरुषों के सद्वचनों में गहन आस्था रख कर ही अध्यात्म-मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है।" ये शब्द उन्होंने गुरु की खोज के सन्दर्भ में लिखे हैं। यहाँ हमें उनकी आस्था के स्वरूप के बारे में पता चलता है। वह अज्ञानी नहीं थे। | उपनिषदों में वर्णित आत्मा-विषयक समस्त तथ्यों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। फिर भी साधना में गुरु की आवश्यकता को वह बहुत अधिक महत्त्व देते थे। वह जानते थे कि जब तक गुरु के अमृत-वचनों में असन्दिग्ध आस्था नहीं होती, तब तक अहं का नाश नहीं हो सकता। अपने गुरु की खोज का विवरण प्रस्तुत करते समय उन्होंने हमें इसी सत्य की शिक्षा दी है।

उनकी साधना के स्वरूप के बारे में हमें इसी प्रकार जानना होगा। वास्तविकता यह है कि स्वामी शिवानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त व्यावहारिक था। जो-कुछ वह सद्ग्रन्थों या महापुरुषों से सीखते थे, उसे वह व्यवहार में ला कर देखते थे, ताकि इस बात का ज्ञान हो सके कि किस सीमा तक वे उपदेश लिए अनुकूल हैं। यदि वे अनुकूल नहीं सिद्ध होते थे, तो उनकी निन्दा के बजाय वह उन पर ध्यान देना बन्द कर देते थे। कोई उपदेश या विचार उनके लिए अनुकूल नहीं है। बस, इससे अधिक वह उसके बारे में नहीं सोचते थे। इसीलिए जो-कुछ उन्होंने लिखा है, उसका सम्बन्ध उनके स्वभाव से है। वह चमत्कार दिखाने या सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से शरीर को यातना देने के पक्ष में नहीं थे।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ-क्या किसी सन्त को अपनी आत्मकथा लिखनी चाहिए ? अपने और अपनी उपलब्धियों के बारे में कुछ व्यक्त करने के पीछे क्या आत्म-प्रदर्शन की भावना छिपी नहीं रहती है? यदि सांसारिक व्यक्ति अपने बारे में इस प्रकार कहे या लिखे कि अन्य व्यक्ति उससे प्रभावित हो जाये, तो उसे क्षमा किया जा सकता है; परन्तु क्या अपनी महत्ता को नकारने वाले आत्म-त्यागी सन्त के लिए ऐसा करना उचित है? इस दृष्टि से विचार करें तो स्वामी शिवानन्द बिलकुल निर्दोष हैं। उनकी यह पुस्तक नाम मात्र को ही आत्मकथा है। इससे पाठकों के प्रशंसा-पत्र प्राप्त करने के उद्देश्य के कुछ भी नहीं लिखा गया है। उनका केवल एक ही उद्देश्य रहा है। वह जानते हैं कि यद्यपि उन्होंने पहले से कोई योजना नहीं बनायी थी; परन्तु ईश्वर ने उनसे द डिवाइन

लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) स्थापित करवायी, अरण्य विश्वविद्यालय (अब अरण्य अकादमी) की नींव डलवायी तथा इसी तरह के अन्य कार्य भी करवाये थे। ये सारे कार्य ईश्वर से प्राप्त संरक्षण में आस्था रखते हुए निर्भीक जीने की अनुभूत आवश्यकता की पूर्ति कर रहे हैं। उन्हें पता है कि उनकी इच्छा होने या न होने के बावजूद वह एक बहुत बड़े मिशन के अध्यक्ष हैं और इस धरती से प्रयाण करने के पूर्व वह सबको यह बता सकेंगे कि समस्त मानवता के लिए उनका मिशन हितकारी है। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, इस आत्मकथा को प्रस्तुत करने का यही मुख्य उद्देश्य है। इतर उद्देश्यों से लिखी गयी अन्य आत्मकथाओं से इस आत्मकथा की तुलना नहीं की जानी चाहिए।

अब इस आत्मकथा का मूल्यांकन करें। प्रारम्भ से अन्त तक उस व्यक्ति के लिए इस पुस्तक का बहुत अधिक शैक्षणिक महत्त्व है जो इससे लाभ उठाना चाहता है। प्रथम अध्याय में उन्होंने अपने पूर्वज अप्पय्य दीक्षितार के प्रति अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त की है। अपने माता-पिता तथा बाल्यकाल के बारे में उन्होंने जान-बूझ कर बहुत कम लिखा है। मलाया में व्यतीत किये गये अपने जीवन के बारे में लिखते समय उन्होंने डाक्टरी व्यवसाय के प्रति अपने प्रेम तथा आदर्श डाक्टरों द्वारा चिकित्सा-कार्य सम्पन्न करके ढंग के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। किस प्रकार एक श्रुति-वाक्य (जिस क्षण वैराग्य की भावना जन्म ले, संसार का त्याग कर देना चाहिए) ने उनके जीवन को रूपान्तरित कर दिया, इसका वर्णन उन्होंने 'नवीन दृष्टिकोण का उदय' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। उन्होंने भ्रमणशील भिक्षुक के रूप में बिताये गये जीवन, तीर्थयात्रा से प्राप्त होने वाले लाभों, गुरु की खोज, ऋषिकेश में स्थायी रूप से निवास करने के निर्णय का वर्णन अतिरंजना-रहित सरल भाषा में किया है। इस वर्णन से हमें कुछ-न-कुछ सीखने को मिलता है। एकांगी आध्यात्मिक साधनाओं, समन्वित साधना को अपनाने के अपने निर्णय, स्वर्गाश्रम में उस साधना का व्यावहारिक अभ्यास, भ्रमण करने की अवधि में दिये गये भाषणों तथा अपनी कैलास-यात्रा के बारे में जो कुछ उन्होंने लिखा है, उससे साधना में सेवा को सम्मिलित करने के उनके प्रारम्भिक प्रयासों का पता चलता है। आध्यात्मिक क्रम-विकास की इस निर्माणात्मक अवधि के व्यतीत हो जाने के बाद स्वामी शिवानन्द के जीवन का वह भाग प्रारम्भ होता है, जिसमें उन्होंने जन-जन के बीच आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार किया। दिव्य जीवन संघ के निर्माण के प्रारम्भिक चरणों का उन्होंने बहुत अच्छा वर्णन किया है। अपनी निःस्वार्थता और उदारता से उन्होंने जिस प्रकार अपने शिष्यों का मन जीत लिया, उससे सम्बन्धित उनके उद्‌गार अत्यन् मूल्यवान् हैं और जिन दिनों दिव्य जीवन संघ के कल्याणकारी और उदात्त कार्य प्रारम् हुए थे और दूसरों को लाभान्वित करने लगे थे, उस समय अपनी महान् कामनाओं को फलता-फूलता देख कर उन्हें जो प्रसन्नता और सन्तोष हुआ था, उसका भी वर्णन उन्होंने किया है। फिर वह उपनिषद् के महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' में ही रमण करने बाले समस्त विश्व के हितकारी मित्र के रूप में उभर कर आये। इसके बाद उन्होंने अपने सहयोगियों के स्वभावों में सुधार लाना प्रारम्भ किया। इस उद्देश्य से उन्होंने किस-किस के साथ क्या-क्या किया, इसका वर्णन 'सामूहिक साधना' शीर्षक के अन्तर्गत और उसके बाद के अध्यायों में मिलता है। इसके बाद दिव्य जीवन अभियान ने और जोर पकड़ा। अपने आदर्शों की सार्वजनीन उपयोगिता तथा आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने हेतु सुझाये गये उपायों की प्रभावोत्पादकता के कारण यह अभियान तत्कालीन अनुभूत आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम होने लगा।

इन सब तथ्यों के बारे में स्वामी शिवानन्द ने इस प्रकार लिखा है, मानो वह किसी संस्था का वार्षिक प्रतिवेदन लिख रहे हैं; परन्तु पुस्तक का प्रत्येक वाक्य उनके मन की उच्चता, मानव-कल्याण के कार्यों के प्रति उनकी निष्ठा और भक्तों-शिष्यों द्वारा दिये जाने वाले स्नेह तथा सम्मान की सूचना देता है। आश्रम की घटनाओं के सीधे-सरल विवरण में उनके तथा उनके कार्यों की महत्ता ही झलक झलकती है। अपने मिशन के द्रुतगति से होने वाले विकास का विवरण उन्होंने एक संक्षिप्त अध्याय में किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि किसी भले आदमी द्वारा किये जाने वाले भले कार्यों में ईश्वर हमेशा साथ देता है। दिव्य जीवन संघ के सिद्धान्त किसी से छिपे

नहीं हैं। ये धर्म के उस सच्चे स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं जो प्रसन्नता-सहजता के साथ जीवन को सरल तथा व्यावहारिक ढंग से जीने का तरीका सिखाता है। इस दिव्य जीवन संघ के विवरण अत्यन्त प्रबोधक हैं।

आध्यात्मिक सम्मेलनों, भ्रमण करने की अवधि में दिये भाषणों, कीर्तनों, प्रभातफेरियों के विवरणों को पढ़ कर पता चलता है कि दिव्य जीवन संघ के आदशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने हेतु समय का अधिकतर सदुपयोग हो सके, इस दृष्टि से अनेक सक्रिय कार्यक्रम चलाये गये हैं। आत्मकथा के लेखक ने साधकों की देखभाल करने, विश्वजनीन प्रेम का दान करने, दूसरों को सहायता पहुँचाने और दूरस्थ प्रदेशों में रहने वाले साधकों का मार्ग-निर्देशन करने से सम्बन्धित निर्देश भी दिये हैं। लेखक ने अपने कुछ पत्रों को भी उद्धृत किया है। इन्हें पढ़ने से पता चलता है कि जो व्यक्ति उनके द्वारा संचालित कार्यों में सेवा-भाव से रत थे, उनके आध्यात्मिक-यहाँ तक कि भौतिक कल्याण के लिए भी वह (लेखक) बहुत उत्सुक थे।

पुस्तक के उत्तरार्ध में लेखक ने अनुकूलन (accommodation) की भावना, त्याग की महिमा, युवावस्था में ही त्याग की आवश्यकता, आदर्श शिष्य की अर्हताएँ, हृदय-शुद्धि की आवश्यकता, महिलाओं के प्रति हमारे दृष्टिकोण, महिलाओं द्वारा संसार-त्याग आदि के बारे में बहुमूल्य बातें बतलायी हैं। कुछ अध्यायों को पढ़ने से पता चलता है कि आधुनिक मानव की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वे अपने उदार दृष्टिकोण के कारण प्राचीन परम्पराओं का त्याग करने में पीछे नहीं रहे हैं।

लेखक ने पुस्तक में ध्यान, सेवा, आश्रमों की स्थापना, राजनीति में रुचि, दीक्षा का महत्त्व आदि विषयों पर संन्यासियों को महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये हैं। पुस्तक का शीर्षक चाहे जो हो, यह बहुमूल्य सुझावों और उपदेशों का एक अद्वितीय खजाना है।

लेखक ने अपनी पुस्तकों तथा अन्य प्रकाशनों के बारे में जो-कुछ लिखा है, उसका अध्ययन करने से पता चलता है कि न तो उन्हें प्रकाशनाधिकार (copyright) से कोई मोह था और न वे धन ही अर्जित करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि शरीर-त्याग के बाद भी संसार के प्रत्येक भाग में बहुमूल्य ज्ञान का भण्डार स्थायी रूप से बना रहना चाहिए। शायद इसीलिए वह एक बहुसर्जक लेखक बन गये हैं। हर वर्ष इनकी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, जो देश-विदेश में बिना मूल्य वितरित की जाती हैं।

पुस्तक के एक अंश में उन्होंने अपने शिष्यों को लड़ाई करने, दूसरों को विक्षुब्ध करने और उनके प्रति दुर्भावना रखने की बुराइयों से मुक्त होने के लिए महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये हैं।

समूची पुस्तक की सामग्री पर चर्चा करना सम्भव नहीं है; परन्तु एक बात निश्चित ही कही जा सकती है-कोई भी पृष्ठ खोल लें, उसमें आपको आन्तरिक जीवन को रूपान्तरित कर देने वाली सामग्री मिल जायेगी। पुस्तक का एक-एक शब्द लेखक के आन्तरिक अनुभव की लेखनी से लिखा गया है। पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने न केवल सदैव अपने मन को शुद्ध और उदात्त बनाये रखने का प्रयास किया है, वरन् वह अपने इन गुणों को दूसरों को देने के लिए भी सदैव प्रयत्नशील रहे हैं।

स्वामी शिवानन्द बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि साधक को सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए लालायित नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये अध्यात्म-मार्ग की यात्रा में अवरोध उत्पन्न करती हैं। वह कुछ ऐसे व्यक्तियों के बारे में जानते हैं जो अध्यात्म-क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास कर रहे थे; परन्तु सिद्धियों के लालच में पड़ कर वे पतन के गर्त में गिर गये। स्वामी जी के इस मत को कौन स्वीकार नहीं करेगा ! लेकिन मेरे मन में बार-बार एक बात आती है। आश्रम में अनगिनत ऐसे पत्र आते हैं जिनमें स्वामी जी के चमत्कारों का उल्लेख रहता है। ऐसा तो सम्भव नहीं है कि ऐसे पत्रों के सभी लेखकों ने झूठ लिखा हो या वे विभ्रम के शिकार हों। हाँ, उनमें से कुछ थोड़े आत्म-प्रबंधक

लोग अवश्य हो सकते हैं। लेकिन जिस प्रकार की घटनाएँ, प्रकाश में आयी हैं और जितनी सावधानी से उनका वर्णन किया गया है, उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 'स्वामी जी में असाधारण शक्तियाँ (सिद्धियाँ) हैं।' यदि यह बात सत्य है, तो क्या उनका भी पतन होगा? नहीं, कभी नहीं; क्योंकि वे उत्थान-पतन से बहुत ऊपर उठ चुके हैं। वह एक ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं जिसमें वह अमर आत्मा सच्चिदानन्द या ईश्वर से एकाकार हो सकते हैं। फिर उनके उत्थान-पतन का प्रश्न नहीं उठता ही नहीं। जब अहं को ही नकार दिया जाता है, तब किसी प्रकार की आशंका नहीं रह जाती।

एक बात निश्चित है। जो सिद्धियों की कामना नहीं करता, परन्तु ईश्वर के साथ अपने घनिष्ठ सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप निःस्वार्थ भाव से सिद्धियों का प्रदर्शन करता है, ऐसा सिद्ध पुरुष उस घटिया श्रेणी के व्यक्ति से नितान्त भिन्न है जो आत्माओं को वश में कर लेता है तथा अजीबो-गरीब कार्यों का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। (अच्छी या बुरी) आत्माओं को वश में कर लेना और आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न होना-ये दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। जो वास्तविक सिद्ध पुरुष होगा, वह न अपने को भगवान् कहलायेगा और न अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करेगा। ऐसी बात नहीं है कि सिद्ध पुरुष को इस बात का बोध न हो कि वह चमत्कारों का प्रदर्शन कर सकता है; परन्तु उसकी दृष्टि में वे सम क्षमताएँ, जिन्हें चमत्कार कहा जाता है, अति-साधारण से भी अधिक साधारण हैं। इसका कारण यह है कि जन-साधारण, जो उन क्षमताओं को असाधारण मानते हैं, की पहुँच से वह परे हैं। और स्वामी शिवानन्द इसी प्रकार के वास्तविक सिद्ध पुरुष हैं, लेकिन वह कभी सार्वजनिक रूप से इस बात की घोषणा नहीं करते।

इस भूमिका को समाप्त करते-करते मैं यह बात कहने से अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ कि इस आत्मकथा के लेखक ने सम्भवतः अनजाने में अपने प्रत्येक वाक्य में अपने वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन कर दिया है। और क्या ही भव्य व्यक्तित्व है यह! इस दृष्टि से यह पुस्तक एक वास्तविक आत्मकथा है।

उन्होंने जितना कुछ लिखा है, उसे पढ़ कर आपको उनके इस असाधारण गुण का पता चलता है कि वह बड़े-छोटे, विद्वान्-मूर्ख-सभी को सहायता देने के लिए आतुर रहते थे। वह यह भी समझते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी सीमाओं के अन्तर्गत उस परमानन्द को प्राप्त करने का पात्र है जो इस संसार का जन्मदाता, पालक और संहारकर्ता है। वह इस बात के लिए भी सतत प्रयत्नशील रहते थे कि सामान्य जनों का ऊर्ध्वगामी रूपान्तरण हो सके, ताकि वे सदा के लिए अपने-अपने बन्धनों से मुक्ति पा लें और उस परमानन्द को प्राप्त कर सकें जिसे ईश्वर की सन्तान होने के नाते प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार उन्हें है।

स्वामी शिवानन्द जो महान् कार्य कर चुके हैं, उनके बदले हम नश्वर प्राणी भगवान् से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह हमें उनके चरण-चिह्नों पर चलने की सामर्थ्य प्रदान करें!

-स्वामी सदानन्द सरस्वती

आमुख

एक महान् विद्वान् की आत्मकथा प्रकाशित करके योग-वेदान्त अरण्य विश्वविद्यालय (अब योग-वेदान्त अरण्य अकादमी), शिवानन्दनगर ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यह पुस्तक स्वामी जी की प्रतिभा की अत्यन्त मौलिक उपज है। इसमें उन्होंने अपने अनुभवों का महान् विश्लेषण तो किया ही है, साथ ही पाठकों पर भी अपनी निष्ठा की गहरी छाप छोड़ी है। इस कारण यह पुस्तक पूर्णतः विश्वसनीय बन गयी है। समूची आत्मकथा आत्मसाक्षात्कार-प्राप्त एक महान् द्रष्टा के दिव्य दर्शन से अनुप्राणित है। अभिव्यक्तियाँ इतनी प्रांजल तथा काव्यात्मक हैं कि उनसे अत्यन्त दुरूह विषयों के दार्शनिक विवेचनों की सूखी अस्थियाँ नवीन प्राण-ऊर्जा प्राप्त करके पुनरुज्जीवित हो उठी हैं।

इस आत्मकथा के प्रकाशन से भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण धरोहर गौरवान्वित हुई है। निश्चय ही इससे विश्व का अत्यधिक कल्याण होगा; क्योंकि इसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य जीवन-वृत्तान्तों में नहीं पायी जातीं। इस पुस्तक में गुरुदेव की लेखनी ने न केवल उनके अपने व्यक्तित्व की अन्तरतम झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं, वरन् व्यावहारिक अध्यात्म तथा भारत की आध्यात्मिक सम्पदा पर भी प्रकाश डाला है। इसमें वह सब-कुछ है जिस पर सार्वजनीन सहानुभूति और बोध आधारित रहते हैं। इसमें दिव्य जीवन संघ की स्थापना, विकास तथा कार्यकलापों का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

परमाणविक युग के कोलाहल में दिव्य जीवन संघ जैसी आध्यात्मिक संस्था की स्थापना होना विरोधाभास है। लोकोपकारी कार्यों तथा सौन्दर्यपरक (aesthetic) संस्कृति के सीमित माध्यमों से यह संस्था जिस असीम सत्ता को अभिव्यक कर रही है, उसके कारण आधुनिक सभ्यता की बहुत-सी अधोगामी प्रवृत्तियाँ नियन्त्रित हुई हैं। जन-साधारण के लिए इस संस्था के विविध कार्यकलापों तथा इसके प्रख्यात संस्थापक के बारे में जानकारी प्राप्त करना सरल नहीं है। इस दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक की गागर में विद्वान् लेखक ने अध्यात्म-जीवन का सागर भर दिया है और एक ऐसा वातावरण निर्मित किया है जो पाठक को आरम्भ से अन्त

तक मन्त्रमुग्ध किये रहता है। उन्होंने जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जो चमत्कारिक तो हैं ही, साथ ही शिक्षापूर्ण भी हैं। संसार-भर की सभी धार्मिक प्रवृत्तियों के पाठक आध्यात्मिक उत्थान के व्यावहारिक उपदेशों को पुस्तक-रूपी इस भण्डार से प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित होंगे। इस छोटी पुस्तक में लेखक ने सांसारिक बन्धन में पड़े हुए परन्तु अपने आध्यात्मिक विकास के लिए उत्सुक उन पाठकों के लिए भारत की अध्यात्म-संस्कृति की सारी उपयोगी बातें भर दी हैं जो वेद जैसे महान् ग्रन्थ की गहराइयों में समयाभाव या क्षमताभाव के कारण नहीं उतर पाते। संक्षेप में हम कह सकते हैं, कि पुस्तक उस दिव्य तत्त्व का निरूपण (भले ही आंशिक रूप से) करती है, जो भक्तों का आराध्य प्रेमास्पद या परम ध्येय है। इस दृष्टि से यह पुस्तक पाठकों को आध्यात्मिक साधक का जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करती है।

मानवता के कल्याण के लिए स्वामी जी ने साधना के व्यावहारिक पक्ष पर पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करके इस पुस्तक को सभी प्रकार के साधकों के लिए उपयोगी बना दिया है। देश-विदेश के अनेक सन्तप्त प्राणियों के लिए स्वामी जी के हृदय में दुःख का जो सागर उमड़ता था और भारत माता को उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा के सिंहासन पर पुन आसीन करने के लिए मन में जो ललक थी और इसके लिए वह जो-कुछ करना चाहते थे, उन सबका विशद वर्णन इस पुस्तक में है। यदि हमारे देश के नवयुवक देश-विदेश में सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें श्रेष्ठ द्रष्टा, वेदान्त-ध्वजी, महानता तथा उच्चता के साकार रूप में स्वामी शिवानन्द जी के अद्भुत जीवन से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। स्वामी शिवानन्द के जादुई व्यक्तित्व, उनकी जीवन्तता और सहनशीलता का भी सजीव वर्णन इस पुस्तक में मिलता है। आत्मोत्तेजक घटनाओं से परिपूर्ण यह पुस्तक निश्चित ही पाठक का मन मोह लेगी।

अपने शिष्यों को स्वामी जी जिन नवीन और क्रान्तिकारी विधियों से प्रशिक्षित करते थे, उनके वृत्तान्त से हमारे अपने आध्यात्मिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। ईसामसीह ने कहा था- "जो मेरा अनुसरण करेगा, वह अँधेरे में चलेगा; परन्तु उसे जीवन का प्रकाश मिलेगा।" मननशील लेखक ने सत्य (जो परम सत्ता के साथ हमारे ऐक्य का एक रूप है) के विभिन्न पक्षों के बारे में स्पष्ट शब्दों में विभिन्न तरीकों से इस प्रकार बतलाया है, मानो सत्य-रूपी पदार्थ पर बहुरंगी संकेन्द्रिय किरणें पड़ रही हों। उसे पढ़ कर उनके (लेखक के) प्रति हमारा मन श्रद्धा से भर जाता है। वह हमें लोकप्रियता की उमड़ती हुई लहरों पर आरूढ़ दिखायी देने लगते हैं। गहनतम दर्शन के गहनतम सत्यों की विवेचना भावोत्तेजक घटनाओं, कहानियों के सहारे आकर्षक और सरल शैली में इस प्रकार की गयी है कि वह प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए भी बोधगम्य बन गयी है। भक्त, ज्ञानी, कर्मयोगी-सभी प्रकार के पाठकों को यह पुस्तक अच्छी लगेगी; क्योंकि यह उन्हें एक ऐसे नये संसार का परिचय देती है जिसमें आनन्द अपने चरमोत्कर्ष पर रहता है और हर्ष की खुमारी सर्वत्र छायी रहती है। इस संसार से परिचित हो कर परम तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है जो अस्तित्व के लिए अपरिहार्य है।

जब स्वामी शिवानन्द उद्घोष करते हैं, तब सारा जगत् भाव-विभोर हो कर उन्हें सुनने लगता है। उनके व्यक्तित्व की दीप्ति, उनके दृष्टिकोण का पुरातनत्व, उनकी प्रतिभा की प्रखरता, करुणा से पूरित उनका स्वभाव और मानवता का कल्याण करने हेतु उनके उत्साह की प्रखरता-इन सब गुणों ने उन्हें एक दैवी पुरुष बना दिया है। वह कहते हैं-"पतित जनों का उद्धार करना; अन्धों को राह बताना; दुःखी प्राणियों को सान्त्वना देना; निराश व्यक्तियों को प्रोत्साहित करना; पड़ोसियों को आत्म-स्वरूप मान कर उन्हें प्रेम करना; गायों, पशुओं, महिलाओं और बच्चों की रक्षा करना; अपनी वस्तु पर दूसरों का भी अधिकार समझना-ये हैं मेरे जीवन के आदर्श और उद्देश्य । मैं आपकी सहायता और मार्ग-दर्शन करूँगा। मैं आपकी सेवा करने के लिए ही जीवित हूँ। मैं आपको प्रसन्न करने के लिए ही जीवित हूँ। मेरा शरीर सेवा के लिए ही बना है।" यह है उनका रोमहर्षक सन्देश। इस परमाणविक युग के लोगों के लिए स्वामी जी ने वर्षों तक परिश्रम करके एक नया संसार निर्मित किया। उसका नाम है 'आनन्द-कुटीर'। इस अनोखे संसार में तरह-तरह की रुचियों, स्वभावों वाले और क्रम-विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरने वाले सत्यान्वेषी साधकों का आध्यात्मिक विकास अत्यन्त द्रुत गति से होता है। आध्यात्मिक सत्य शाश्वत होता है, परन्तु इसे बार-बार दोहराना होता है; इसका बार-बार निदर्शन किया जाता है, ताकि यह हम

सबके लिए एक जीवन्त उदाहरण बन सके। स्वामी जी का जीवन मूक प्रार्थना की शान्ति तथा निःस्वार्थ सेवा की गत्यात्मक का संयम है। यह जीवनी अनगिनत कठिनाइयों के बीच दुःखी मानवता की सेवा तथा कठिन आध्यात्मिक प्रयासों की एक कहानी है। जो लोग स्वामी शिवानन्द के आश्रम गये हैं, वे जानते हैं कि अपने शिष्यों में अपनी अनुकम्पा की शक्ति संचारित करके स्वामी शिवानन्द ने उन्हें आश्रम-संचालन की अभूतपूर्व क्षमता तथा दिव्य प्रेम के जिन गुणों से विभूषित कर दिया है, वे अत्यन्त असाधारण गुण हैं। निःसन्देह स्वामी जी का मिशन तथा दिव्य जीवन अभियान शीघ्र ही एक विश्व-शक्ति बन जायेगा।

परमहंस स्वामी शिवानन्द के जीवन की कहानी पढ़ना व्यावहारिक धर्म का पाठ पढ़ने के समान है। स्वामी जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा, बहुमुखी मनःशक्तियों तथा अनगिनत नानाविध योगदानों से संसार को चकित कर रखा है। सत्य का साक्षात्कार प्राप्त करने के बाद अब वह इसका दर्शन दूसरों को कराना चाहते हैं। मानव-इतिहास में अनेक सिद्ध ज्ञानी हुए हैं; यथा बुद्ध, ईसा, रामकृष्ण परमहंस । स्वामी शिवानन्द अपने गुणों तथा कार्यों के बल पर सिद्ध ज्ञानियों की श्रेणी में आ गये हैं।

अपनी आध्यात्मिकता द्वारा विश्व में अपेक्षित परिवर्तन लाने का उत्तरदायित्व भारत के ही सबल स्कन्धों पर है। भारत का मुख्य लक्ष्य अपने आध्यात्मिक सन्देशों को देश-विदेश तक पहुँचाना है। हृदय-परिवर्तन वर्तमान समय की आवश्यकता है। हमें स्वतन्त्रता की आवश्यकता थी; क्योंकि हम समझते थे कि हमारे पास प्रतिपादित तथा प्रचारित करने हेतु आध्यात्मिक सत्य हैं तथा प्रसारित करने हेतु समस्त संसार के लिए हितकारी सन्देश हैं। अब इन्हीं सन्देशों को प्रसारित करके भारत के लक्ष्य की पूर्ति हो सकेगी। इस कार्य में स्वामी शिवानन्द हमारा मार्ग निर्देशन कर रहे हैं। यदि परतन्त्र भारत को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए महात्मा गान्धी की आवश्यकता थी, तो पुनरुत्थानशील भारत को अपनी मूल्यवान् विरासत तथा अपने (उपर्युक्त) मुख्य लक्ष्य के प्रति जागरूक बनाने के लिए स्वामी शिवानन्द की आवश्यकता है।

स्वामी शिवानन्द की तरह के महामानव की आवश्यकता का अनुभव इतना कभी नहीं हुआ जितना वर्तमान समय-परमाणविक युद्ध द्वारा आत्मघात करने पर उतारू मनुष्यों के युग में हो रहा है। वह पृथ्वी और स्वर्ग के बीच की एक कड़ी हैं और यदि कोई महापुरुष मानव के आध्यात्मिक विकास तथा उसको शान्ति प्रदान करने के कार्यों में सहायक हो सकता है तो वह स्वामी शिवानन्द ही हैं।

भारत देश दुःखी और गरीब है, फिर भी भारतीय प्रसन्न रहते हैं। इसका कारण यह है कि अब भी भारत में स्वामी शिवानन्द जैसे सन्त-महात्माओं की यह वाणी गूँज रही है कि आनन्द का स्रोत आत्मा है, न कि भौतिक सुख-सुविधाएँ। स्वामी जी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाले सन्त हैं। वह योग को निर्जन मठों से निकाल कर जन-समूह तक ले आये हैं। वह अज्ञात, अदृश्य ब्रह्म के चिन्तन में खो नहीं गये हैं।

वह जन-साधारण के सन्त हैं और वह हमें बताना चाहते हैं कि इस संसार में अमरता के, 'असत्' में 'सत्' के तथा अन्धकार में प्रकाश के तत्त्व उपस्थित हैं। वह एक आधुनिक पैगम्बर हैं। आप शिवानन्द आश्रम अवश्य जायें तथा अपना शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कायाकल्प करा कर लौटें। यह आश्रम गंगा के तट पर स्थित है। पीछे आश्रम का विश्वनाथ-मन्दिर है। इस आश्रम में अनेक सन्त-महात्मा रहते हैं जो सद्गुरु शिवानन्द महाराज के मानव-कल्याण का कार्य कर रहे हैं।

स्वामी शिवानन्द ने इस आश्रम (दिव्य जीवन संघ) की स्थापना सन् १९३६ में की थी। इस आश्रम के योग-वेदान्त अरण्य विश्वविद्यालय (अब योग-वेदान्त अरण्य अकादमी) में आध्यात्मिक साधकों को योग तथा वेदान्त का प्रशिक्षण दिया जाता है तथा अध्यात्म-ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाता है। प्रत्येक सच्चे सत्यान्वेषी की सहायता करने को आतुर इस महान् व्यक्ति की ओर मैं समूचे संसार का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। धार्मिक जीवन

के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण रखने वाला यह व्यक्तित्व सन्त की वैश्व चेतना, उद्यमशील उद्योगपति की सक्रियता तथा साहसिक व्यक्ति की निर्भीकता का अद्‌भुत समुच्चय है। ईश्वर तक पहुँचने के अनेकानेक मार्गों तथा भगवच्चिन्तन की विविध प्रणालियों के मूलतत्त्वों का समन्वय उनकी संस्था शिवानन्दाश्रम के प्रत्येक कार्यकलाप में झलकता है।

परम पावन स्वामी शिवानन्द के जीवन की दो युगान्तरकारी घटनाएँ हैं-सन् १९५० में की गयी भारत तथा लंका देशों की यात्रा तथा सन् १९५३ में आयोजित धर्म-संसद। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने कई विश्वविद्यालयों तथा उच्चस्तरीय संस्थाओं में प्रवचन दिये जिनके मुख्य विषय थे-विश्व-शान्ति तथा हिन्दू-दर्शन । अपार ज्ञान से अनुप्राणित उनकी विचारोत्तेजक वाणी को जिस किसी ने सुना, वह उनका श्रद्धालु बन गया।

३ अप्रैल १९५३ भारत के लिए एक गौरवमय दिन था। उस दिन जब धर्म-संसद का उद्‌घाटन किया गया, तब शिवानन्द आश्रम के इतिहास के एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ था। भारतीय इतिहास में प्रथम बार संसार के विभिन्न मार्गों से सुविख्यात विद्वान् आ कर इस देश की धरती पर इकट्ठे हुए। निःसन्देह संसार के बुद्धिजीवी तथा दार्शनिक विद्वान् इस आयोजन को बीसवीं शती की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानेंगे।

मानवीय भाषा अतीन्द्रिय-बोध को पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाती। इस पुस्तक में कई स्थलों पर ऐसे दृश्यों (visions) और अनुभवों का उल्लेख है जिन्हें भौतिक विज्ञान तथा मनोविज्ञान की सहायता से नहीं समझा जा सकता। आधुनिक ज्ञान का विकास होने के साथ-साथ लौकिक और अलौकिक के बीच की सीमारेखा स्थिर नहीं रह गयी है। यथार्थ रहस्यवादी अनुभव अब पूर्व की भाँति गहरे सन्देह की दृष्टि से नहीं देखे जाते। स्वामी शिवाानन्द की अमृतवाणी ने उनकी जन्मभूमि भारत को अत्यधिक प्रभावित किया है। यूरोप के विद्वज्जनों को उनके (स्वामी जी के) शब्दों में सर्वव्यापक सत्य की गूंज सुनायी पड़ी है। लेकिन उनके शब्द बौद्धिक चिन्तन की उपज नहीं है। उनकी जड़ें उनके प्रत्यक्ष अनुभवों में छिपी हुई हैं। अतएव सामान्यत धर्म के दिखायी पड़ने वाले रूप को समझने की दृष्टि से धर्म, मनोविज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उनके अनुभवों का बहुत महत्त्व है।

अध्यात्म के आकाश में स्वामी शिवानन्द वर्धमान बालचन्द्र के समान हैं। वह धर्मनिष्ठा के साकार रूप हैं। उनके सन्देश संसार के सुदूर स्थानों तक प्रसारित हो चुके हैं। देश-विदेश में दिव्य जीवन संघ की शाखाएँ पहले से ही स्थापित हैं। अनगिनत व्यक्ति उनके सन्देशों से सान्त्वना प्राप्त कर चुके हैं। अनेक लोगों ने यह अनुभव किया कि स्वामी जी अपनी अलौकिक शक्तियों से उनके भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की बाधाएँ दूर कर देते हैं। शान्ति तथा मैत्री (सामंजस्य) के उच्च आदर्श-जिनके स्वामी जी साक्षात् उदाहरण हैं-आज संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के आदर्श-वाक्य बन गये हैं। आज स्वामी जी को कृष्ण, बुद्ध और ईसामसीह के समकक्ष मान कर सम्मान दिया जा रहा है। मानवता की सेवा करना उनकी एक प्रबल आकाक्षा रही है और इसे उन्होंने हर सम्भव साधन से पूरी करने का प्रयत्न किया है। विश्वविख्यातक योग-वेदान्त अरण्य अकादमी ने विविध उपयोगी विषयों पर उनकी २०० पुस्तकें प्रकाशित की हैं, परन्तु श्रेष्ठता की दृष्टि से इस पुस्तक ने उनके अन्य प्रकाशनों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। इस पुस्तक में हमें अनूठी भारतीय संस्कृति, सभ्यता और गौरव की यथार्थ झाँकी देखने को मिलती है। गहन आध्यात्मिक सत्य सजीव कहानियों के माध्यम से अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किये गये हैं। विभिन्न धर्मों की विचारधाराओं के बीच पाये जाने वाले विरोधों को प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त बोध की सहायता से दूर किया गया है। इन पृष्ठों में प्रत्येक पाठक को-चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी हो-साहस, आस्था, आशा, प्रबोधन-सम्बन्धी प्रेरक विचार पढ़ने को मिलेंगे। स्वामी जी का जीवन धार्मिक प्रयोगों की एक प्रयोगशाला है। उनका सन्देश भारत के राष्ट्रीय जीवन को अनुप्राणित करने वाली एक मूक शक्ति है। वह समस्त विश्व के लिए प्रकाश और बोध के नये युग का अग्रदूत है।

उनकी अप्रतिरोध्य आध्यात्मिक शक्ति से आकर्षित हो कर स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, अज्ञेयवादी-रूढ़िवादी-सभी तरह के लोग उनके पास जाते हैं। सभी उनकी पवित्रात्मा के विकिरणी प्रभाव का तथा उनकी उपस्थिति में अपने उन्नयन का अनुभव करते हैं। उनका प्रेम भेदभाव करना नहीं जानता। सभी प्रजातियों, वर्णों, पन्थों के व्यक्तियों पर उनके प्रेम की वर्षा समान रूप से होती है। जो कोई भी उनसे 'पाना' चाहता है, उसे वह मुक्त-हस्त से 'देते' हैं।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक से पाठकों को उस दिव्यामृत की प्राप्ति होगी जो भौतिकता से ग्रस्त इस संसार में उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस पुस्तक में जीवन के प्रत्येक दिवस के लिए एक सन्देश है। प्रत्येक सन्देश मन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ता है तथा उसमें जीवन को रूपान्तरित करने की अद्‌भुत क्षमता है।

-एन. सी. घोष
शिवानन्द-आत्मकथा

विषय-सूची

प्रकाशकीय 2
अनुवादकीय 3
भूमिका 4
आमुख 10

प्रथमअध्याय

मेरा जन्म 21
श्री दीक्षितार का अवतरण 21
उनकी विशाल प्रतिभा 21
महान् आध्यात्मिक ज्योति 22
मेरा जन्म-स्थान 22
प्रस्फुटन-काल 23
जीवन के संघर्ष 24
मानव-सेवा के प्रथम पाठ 26

द्वितीय अध्याय

अमृतत्व का आह्वान 28
नवीन दृष्टिकोण का उदय 28
परिव्राजक के रूप में 29

तीर्थ-यात्रा से लाभ कैसे उठाया जाये ? 29
गुरु की आवश्यकता 30
यात्रा की समाप्ति 30

तृतीय अध्याय

दिव्य खजाने का वितरण 31
मनमुखी साधनाएँ 31
मेरी समन्वय-साधना की विधि 32
स्वर्गाश्रम का जीवन 33
दिव्य सेवा हेतु प्रवास पर 33
कैलास-पर्वत के आह्वान पर 34
आध्यात्मिक ज्ञान का सामूहिक प्रसार 35
आध्यात्मिक अधिवेशन 35
प्रवचन-यात्रा 36
अमोघ प्रेरणा 36
जनता के जीवन में गतिशील रूपान्तर 37
कीर्तन के विभिन्न प्रकार 37

चतुर्थ अध्याय

दिव्य सेवा-कार्य 39
साधकों की प्रशिक्षण-विधि 39
विनय तथा नम्रता 39
नये साधकों का पथ-प्रदर्शन 40
दिव्य जीवन संघ का बीजारोपण 41
साधकों की योग्यता तथा क्षमता का उपयोग 41
महान् संस्था का जन्म 42
गतिशील आध्यात्मिक नव-निर्माण का केन्द्र 42
सामूहिक साधना 43
प्रार्थना तथा स्वाध्याय-कक्षाएँ 44
दर्शनार्थियों की सेवा 45

पंचम अध्याय

मेरा धर्म, उसकी पद्धति तथा प्रचार 46
दिव्य जीवन-अभियान 46
समय की माँग 47
आध्यात्मिक पूर्णता के लिए सार्वभौम आदर्श 47
संकटकालीन-स्थिति 48
संघ के कार्यों का द्रुत विकास 49

दिव्य जीवन का मार्ग 49
कोई गुप्त सिद्धान्त नहीं 50
सच्चा धर्म क्या है? 50
दिव्य जीवन का सन्देश 51
व्यावहारिक रूप 51
दिव्य जीवन संघ की शाखाएँ तथा आध्यात्मिक साधक 51
मानव का एकत्व 52
दिव्य जीवन की पुकार 52
(१) सामूहिक साधना का महत्त्व 53
(२) दिव्य जीवन संघ की शाखा कैसे खोली जाये ? 53
(३) आध्यात्मिक प्रवाह जीवित रहना चाहिए 54
(४) सेवा ध्यान से भी महान् है 55
(५) पूर्ण योग 56
(६) सर्वांगीण सेवा-कार्य में रत होना 56

षष्ठ अध्याय

शिवानन्द आश्रम 58
आध्यात्मिक संस्थाओं की समस्याएँ 58
आश्रम स्वतः बढ़ चला 58
जहाँ सभी का स्वागत होता है 59
पूर्ण स्वतन्त्रता 59
चमत्कारों का चमत्कार 59
साधकों की देख-रेख कैसे करनी चाहिए? 60
सभी के लिए सहायता तथा प्रेम 61
वैयक्तिक देख-रेख 61
प्रोत्साहन तथा परामर्श 62
यथा-व्यवस्था का गुण 63
किसे आश्रम चलाना चाहिए? 64
आदर्शों को न भूलिए 65

सप्तम अध्याय

संन्यास-मार्ग पर प्रकाश 66
संन्यास की महिमा 66
संन्यास के लिए युवावस्था ही सर्वोत्तम है 66
संन्यास के लिए कठोर शर्तें नहीं हैं 67
कौन मेरा शिष्य बनने योग्य है 67
आन्तरिक स्वभाव को शुद्ध बनायें 68

स्त्रियों के प्रति भाव 68
क्या स्त्रियों को संन्यास लेना चाहिए? 69
स्त्रियों की सेवा 70
जो संन्यास लेना चाहते हैं 70
सेवा तथा ध्यान का समन्वय रखें 71
आर्थिक स्वतन्त्रता 71
सेवा का महत्त्व 72
संन्यासी तथा राजनीति 72
क्या गुरु अनिवार्य है? 73
दीक्षा से मन का रूपान्तर 73
पहले योग्य बनिए, फिर कामना कीजिए 73

अष्टम अध्याय

ज्ञान-यज्ञ 74
गम्भीर अनुभव ही अनेकानेक प्रकाशनों में प्रस्फुटित हुए हैं 74
मेरी पुस्तकों में पुनरुक्ति क्यों ? 75
सत्वर कार्य ही मेरा आदर्श है 76
विस्तार पर ध्यान देना 77
सर्वाधिकार सुरक्षित रखने में आसक्ति नहीं 78
लाभ के प्रति मेरा दृष्टिकोण 79

नवम अध्याय

जीवन का आदर्श 79
जीवन-दर्शन 79
पूर्ण विकास 80
मेरा मत 80
शक्ति तथा महान् कार्य का रहस्य 81
प्रार्थनाओं द्वारा उपचार 81

दशम अध्याय

आध्यात्मिक प्रगति के लिए मेरा तरीका 82
अनासक्त परन्तु सावधान 82
आजीवन साधना 82
इतने फोटो क्यों ? 83
आत्म-निर्भरता 83
प्रत्येक वस्तु के पीछे एक उद्देश्य है 84
सरल जीवन तथा उदारता 84
किसी फैशन का दास नहीं 85

प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रगति 85
वैयक्तिक देख-रेख तथा उदार दृष्टिकोण 85
बल का प्रयोग नहीं वरन् पूर्ण स्वतन्त्रता 86
काम लेने का तरीका 87
प्रसन्नता का सन्देश 88
निन्दा के प्रति मेरा रुख 89
समालोचना के ऊपर उठिए 89
दृढ़ता तथा कृतज्ञता 90
आप बुराई से बच नहीं सकते 91
शिष्यों के बीच झगड़े के प्रति मेरा रुख 91
एक ही विषय को बार-बार उकसाने से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता 92
सफलता का मार्ग 93
मनुष्य के स्वभाव को कैसे बदला जाये ? 93
गुण्डों के प्रति मेरा विचार 94
अभिमान नष्ट कीजिए 94
आदर्श गुरु 94
आओ, आओ, मेरे मित्रो ! 95

एकादश अध्याय

आध्यात्मिक मार्ग पर व्यावहारिक संकेत 95
डाक द्वारा साधकों को उपदेश 95
शान्ति का मार्ग 96
ज्ञान के पिपासु बनिए 96
मेरे पास न आइए 97
संसार के त्याग में जल्दबाजी न कीजिए 97
कार्य करने से पहले विचार कर लीजिए 98
आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुमूल्य उपदेश 99
प्रसुप्त ईश्वरीय स्वरूप का प्रस्फुटन कीजिए 100
निम्न प्रकृति का शोधन 101
विषयपरायणता का अभिशाप 102
साधना आपकी नित्य की आदत बन जाये 102
निष्काम सेवा 103
प्राणायाम से उपद्रव 103
उदासी तथा आलस्य को दूर कीजिए 103
जब आप उत्तेजित हों 103

योग में अति से बचिए 104
योग क्या है ? 104

द्वादश अध्याय

आध्यात्मिक अनुभव 104
नव-जीवन का अवतरण 104
प्रारम्भिक आध्यात्मिक अनुभव 105
ध्यान में 105
मैंने जीवन-क्रीड़ा में विजय पायी 106
उसी में मैं अपना सर्वस्व पाता हूँ 106
आनन्द-सागर में 107
मैं अमर आत्मा हूँ 107
भाषा-रहित कटिबन्ध 107
मैं वही बन चुका हूँ 108
भूमा-अनुभव 108
रहस्यमय अनुभव 109
शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् 109
समाधि की अवस्था 110
गुरु-कृपा से 110
हंसः सोऽहम् 110

त्रयोदश अध्याय

दर्शन तथा विनोद 112
साधकों को भाषण देने का प्रशिक्षण 112
व्यावसायिक व्यक्तियों का मार्ग 112
मजबूत पैकिंग के प्रति जिसमें मोटी कीलें लगायी गयी थीं 112
जब प्रकाशक गण मुख्य बातों को छोड़ देते हैं 113
पुस्तक ही पाण्डुलिपि के विषय में 113
आकर्षक विज्ञापन के प्रति 113
कॉफी के प्रति 113
याद दिलाने का तरीका 113
साधकों की देख-रेख 113
औपचारिक आमन्त्रण 114
काजू के क्षति-ग्रस्त पार्सल के प्रति 114
ऋण के होते हुए भी धनी 114
दिमागी काम करने वालों के लिए आदर्श टानिक 114
मेरे आदरणीय अतिथि 114

पैदल चलने में 'दुर्बलता' के प्रति 115
विरक्त महात्माओं के तरीके........ 115
स्नफ के प्रति दर्शन 115

शिवानन्द-आत्मकथा

प्रथम अध्याय

मेरा जन्म

श्री दीक्षितार का अवतरण

मात्र इस पुण्य भूमि में जहाँ मनुष्य मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर सकता है और जहाँ देव गण भी जन्म लेने की कामना करते हैं तथा आत्यन्तिक मोक्ष के लिए उन्हें जन्म लेना पड़ता है, समय-समय पर अति-दुर्लभ महान् आत्माओं का अवतरण हुआ करता है जिनके जीवन का एकमेव उद्देश्य चतुर्दिक् प्रेम, ज्योति, आनन्द तथा करुणा को प्रसारित करना, दीनों एवं असहायों की सेवा करना, परित्यक्त एवं दुखियों को सान्त्वना देना, अज्ञानियों का उत्थान करना तथा लोगों में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करके सन्तृप्त मानव जाति के लिए विशुद्ध सुख की सर्जना करना होता है। विभिन्न युगों तथा विभिन्न देशों में ऐसे सन्त, ऋषि, अर्हत तथा बुद्ध, फकीर तथा भागवत, स्वामी तथा योगी लोगों ने इस पृथ्वी को विभूषित किया है। भगवद्गीता (६/४१,४२) कहती है-"पुण्य लोकों को प्राप्त कर अथवा वहाँ पर चिरकाल तक निवास कर, योग से च्युत हुआ व्यक्ति पुनः पुण्यवानों तथा ज्ञानी योगियों के घर में जन्म धारण करता है, परन्तु ऐसा जन्म तो इस संसार में अति-दुर्लभ है।"

ऐसे ही व्यक्तियों में अप्पय दीक्षितार भी थे। ऐसे महान् सन्त के कुल में जन्म लेने का सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ। उत्तर आरकॉट जिले के अरणी के निकट अदैपालम में अप्पय दीक्षितार का जन्म हुआ था।

उनकी विशाल प्रतिभा

श्री अप्पय दीक्षितार, जिनका नाम दक्षिण भारत के सबसे महान् नामों में गिना जाता है, संस्कृत भाषा में १०४ ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक थे। इन ग्रन्थों में उन्होंने ज्ञान के विभिन्न विषयों का प्रतिपादन किया है। वेदान्त-विषयक उनके ग्रन्थों से उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य स्पष्ट झलकता है। वेदान्त के सारे दार्शनिक मतवादियों ने उनकी अद्वितीय एवं अनुपम पुस्तकों से प्रेरणा प्राप्त की है। उनके वेदान्त-ग्रन्थों में 'चतुर्मत सार-संग्रह' विख्यात है जिसमें उन्होंने विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शैव तथा अद्वैत मतों की समीक्षात्मक व्याख्या की है जो क्रमश 'न्यायमुक्तावली', 'न्यायमयूखमल्लिका', 'नयमणिमाला' तथा 'नयमंजरी' नाम से प्रकाशित हुए थे जिनका संग्रह ही 'चतुर्मत सार-संग्रह' है।

संस्कृत-साहित्य के प्रायः सभी क्षेत्रों में-साहित्य, कविता, अलंकार, दर्शन में-वे समकालीन पण्डितों में ही नहीं, वरन् कई वर्ष पूर्व के पण्डितों ने भी अद्वितीय थे। अलंकार-शास्त्र के ऊपर 'कुवलयानन्द' उनका सर्वोत्तम

ग्रन्थ माना जाता है। उनकी शिव-स्तुति की कविताएँ शिव-उपासकों को बहुत प्रिय हैं। उन्होंने वेदान्त के ऊपर एक भाष्य लिखा है जिसका नाम 'परिमल' है। यह दार्शनिक पाण्डित्य का एक अनुपम उदाहरण है।

श्री अप्पय दीक्षितार की विद्वत्ता प्रखर थी। अभी भी उनको बहुत सम्मान दिया जाता है। अपने समय में भी उनको आज के समान ही आदर प्राप्त था। एक दिन वे अपनी पत्नी के मायके वाले ग्राम में गये। वहाँ के ग्रामीणों ने उनका विशाल सत्कार किया। वे लोग उनको अपना सम्बन्धी मान कर बड़े गर्व का अनुभव किया करते थे। उनमें बहुत ही कूतहल हो रहा था कि 'महान् दीक्षितार हमारे पास आ रहे हैं।' लोगों की विशाल भीड़ ने सम्मान्य अतिथि दीक्षितार का स्वागत किया। सभी 'वेदान्तकेसरी' के दर्शन के लिए उमड़ पड़े। इस दृश्य को देखने के लिए एक जरा-जीर्ण बुढ़िया लाठी ले कर निकली। वह भीड़ में से निकल कर कुछ ही मिनटों में श्री दीक्षितार के पास आयी। उनको किसी ज्ञात चेहरे की स्मृति हो आयी। "मैंने तो इसको कहीं देखा है! हाँ, हाँ, तुम तो अच्चा के पति हो न?" उस महान् पण्डित ने मुस्कराहट के साथ उसके अनुमान को ठीक बतलाया। वह वृद्धा निराश हो गयी और उदासीन-सी हो कर यह कहते हुए लौट पड़ी कि 'ये तो केवल अच्छा के पति के लिए ही इतना हो-हल्ला मचा रहे हैं।' श्री अप्पय ने उस घटना का उल्लेख सारगर्भित शब्दों में आधे श्लोक में ही किया है "अस्मिन् ग्रामे अच्चा प्रसिद्धा"-इस ग्राम में तो नाम और ख्याति अच्चा की ही है।

महान् आध्यात्मिक ज्योति

बहुत से लोग तो श्री अप्पय को भगवान् शिव का अवतार मानते हैं। जब वे दक्षिण भारत के तिरुपति मन्दिर में गये, तो वैष्णवों ने उनको अन्दर आने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि वे शैव थे। परन्तु आश्चर्य ! प्रात होते ही लोगों ने विष्णु की जगह पर शिव की मूर्ति पायी। महन्त आश्चर्यचकित हो गया तथा श्री दीक्षितार से क्षमा माँगते हुए प्रार्थना की कि शिव की मूर्ति को पुनः विष्णु की मूर्ति में परिणत कर दिया जाये। श्री दीक्षितार ने वैसा ही किया।

श्री दीक्षितार ने सोलहवीं शताब्दी के मध्य में अपना जीवन यापन किया। कविता के क्षेत्र में वे पण्डितराज जगन्नाथ के महान् प्रतिद्वन्द्वी थे। शांकर-वेदान्त के सिद्धान्त के पक्ष में उनका अपना कोई स्वतन्त्र मत नहीं था। जयपुर तथा दूसरे स्थानों में उन्होंने वल्लभ के अनुगामियों के साथ उग्र शास्त्रार्थ किया। उनका ग्रन्थ 'सिद्धान्तलेश' शंकर के अनुगामियों के मतान्तरों का सार है। वे भारत के महान् आध्यात्मिक ज्योति-पुजों में से एक थे। यद्यपि उनके जीवन के विस्तृत विवरण का अभाव है, फिर भी उनके ग्रन्थ उनकी महत्ता के पर्याप्त परिचायक हैं।

मेरा जन्म-स्थान

पट्टामडाई अत्यन्त रमणीक स्थान है-हरित धान के खेतों तथा चतुर्दिक् आम्र-उद्यानों से भरपूर । यह तिन्नेवेली जंकशन से दश मील की दूरी पर है। ताम्रपर्णी से निकाली गयी एक सुन्दर नहर पट्टामडाई को माला के समान वृत्ताकार ठीक उसी प्रकार आभूषित करती है, जैसे सरयू या कावेरी अयोध्या या श्रीरंगम को। ताम्रपर्णी को दक्षिण गंगा भी कहा जाता है। यह नदी ताम्र चट्टानों से हो कर गुजरती है, इसीलिए इसको ताम्रपर्णी कहा जाता है। इसका जल बहुत ही मीठा तथा स्वास्थ्यप्रद है। पट्टामडाई महीन चटाई बनाने के घरेलू व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध है। शिवानन्द रिगेलिया में रखी हुई रेशमी-सी चटाइयों को देख कर लोग प्रशंसा किया करते हैं।

मेरे पिता श्री पी. एस. वेंगु अय्यर श्री अप्पय दीक्षितार के वंशज थे। वे एटियापुरम् राज्य के तहसीलदार थे। वे अति-गुणवान्, शुद्धात्मा, शिव-भक्त तथा ज्ञानी थे। वे एटियापुरम् के राजा तथा जन-साधारण के प्रीति-भाजन थे। लोग कहा करते - "वेंगु अय्यर महापुरुष हैं।" जस्टिस सुब्रह्मण्य उनके सहपाठी थे। वह उनके प्रति बहुत ही

सम्मान का भाव रखते थे। जब कभी वे 'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्' का उच्चारण करते, तब उनकी आँखों से अश्रु-धारा (आनन्द-वाष्पम्) प्रवाहित हो जाती थी। उनके दादा पन्नई सुब्बियर के नाम से विख्यात थे। पन्नइयर का अर्थ है जमींदार ।

पट्टामडाई में एक अति-सुन्दर हाई स्कूल है। उस समय महाविद्वान् स्वर्गीय श्री रामशेष अय्यर, बी. ए., एल. टी. उसके संस्थापक, संचालक थे। इस स्थान की दूसरी मुख्य विशेषता यह है कि पट्टामडाई-भूमि के सभी बालक संगीत में रुचि रखते तथा अच्छा गाना जानते हैं। पट्टामडाई ने बहुत से ख्याति-प्राप्त संगीतज्ञों को जन्म दिया है।

श्रीमती पार्वती अम्माल तथा श्री पी. एस. वेंगु अय्यर के तीसरे पुत्र के रूप में ८ सितम्बर १८८७, बृस्पतिवार को सूर्योदय के समय मेरा जन्म हुआ, भरणी नक्षत्र चढ़ाई पर था। मेरे बड़े भाई श्री पी. वी. वीरराघव एट्टियापुरम् के राजा के वैयक्तिक सहायक थे। मेरे दूसरे भाई श्री पी. वी. शिवराम अय्यर पोस्ट आफिसों के निरीक्षक थे। मेरे चाचा अप्पय शिवम् संस्कृत भाषा के बहुत बड़े विद्वान् थे। वे तिन्नेवेली की जनता में बहुत सम्मान प्राप्त व्यक्ति थे। उन्होंने संस्कृत में बहुत-सी दर्शनशास्त्र की पुस्तकें लिखी हैं। मेरे माता-पिता ने मेरा नाम कुप्पुस्वामि रखा था।

बालकपन में मैं फूल तथा बेल-पत्र ला कर सुन्दर पुष्प-माला गूँथ कर अपने माता-पिता की शिव-पूजा में सेवा करता था।

प्रस्फुटन-काल

भक्तों, सन्तों तथा दार्शनिकों के परिवार में माता-पिता ने बहुत ही लाड़-प्यार से मेरा लालन-पालन किया और मुझको अच्छी शिक्षा भी दी। लोग मेरे सुन्दर शारीरिक गठन, सुविकसित छाती तथा गठी हुई भुजाओं की बहुत प्रशंसा किया करते थे । एटियापुरम् के राजा मेरे सुगठित शरीर, शिष्टाचार और व्यवहार से बहुत प्रसन्न थे। मैं स्वभावतः ही वीर, साहसी, निर्भय और मिलनसार था। प्राचीन काल में, विशेषकर गाँवों में, दुर्व्यसनों के लिए कोई स्थान नहीं था; शिक्षा तथा संस्कृति में उन्नति के लिए वातावरण अति-अनुकूल था। मैं बाल्यकाल में असाधारणतः फुरतीला और बहुत ही उत्साही प्रकृति का था।

अब भी मुझे स्पष्ट याद है कि जब तत्कालीन गवर्नर लार्ड ऐम्पथिल १९०१ में शिकार खेलने के लिए आये थे, तब मुझे अभिनन्दन-पत्र पढ़ने के लिए चुना गया था। कुमारापुरम् के प्लेटफार्म पर, कोईलपट्टी रेलवे स्टेशन पर मैंने अँगरेजी में एक सुन्दर स्वागत-गान भी गाया था। वार्षिक पुरस्कार वितरण के समय पर मैं स्कूल से बहुत-सी पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त करता था। एक बार मुझको शेक्सपीयर का ग्लोब एडीशन तथा मैकाले के भाषण एवं लेख मिले। १९०३ में मैंने राजा हाई स्कूल एट्टियापुरम् से मैट्रिक की परीक्षा पास की। तब मैंने एन. पी. जी. कालेज में प्रवेश किया, जिसके तत्कालीन प्रिंसिपल माननीय एच. पैकन्हम वाल्श थे जो अब एक बिशप हैं।

कालेज में नाटक इत्यादि में मैं अधिक रुचि रखता था। १९०५ में जब शेक्सपीयर का 'मिड-समर-नाइटस्-ड्रीम' नाटक खेला गया था, तब मैंने उसमें हेलेना का अभिनय किया था। मैंने मदुरा तमिल संघ की परीक्षा अच्छे अंक ले कर पास की।

मैंने चिकित्सा-मार्ग को अपनाया तथा त्रिचिन्नापल्ली में तीन वर्षों तक 'अम्ब्रोसिया' नामक एक चिकित्सा-पत्र को चलाया। मैं बहुत ही महत्त्वाकांक्षी तथा उत्साही था।

स्कूल में मैं एक अत्यधिक श्रमशील लड़का था। तंजोर मेडिकल इन्स्टीट्यूट में अध्ययन करते समय मैं छुटियों में भी घर नहीं जाता था। मैं अपना सारा समय अस्पताल में बिता देता था। मुझे शल्य-गृह (आपरेशन थियेटर) में कभी भी प्रवेश की अनुमति प्राप्त थी। मैं उसमें जहाँ-तहाँ घूम कर शल्य-चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करता था, जो उच्च कक्षा के विद्यार्थी को ही होता था। एक पुराना सहायक सर्जन वैभागिक परीक्षा देने वाला था, वह मुझसे अपनी पाठ्य-पुस्तकों को पढ़वा कर सुना करता था। इसके द्वारा मुझे चिकित्सा-सिद्धान्त में दक्षता मिली और मैं वरिष्ठ विद्यार्थियों से टक्कर ले सका। मैं सभी विषयों में हमेशा सर्वप्रथम आता था।

मैंने मन्नारगुडी अस्पताल में एक निपुण सहायक सर्जन का नाम सुन रखा था। मैं भी उनके समान ही बनना चाहता था। बहुत नम्रता के साथ मैं यह बतला दूँ कि मैं बहुत-सी अच्छी डिग्रियों वाले डाक्टरों से भी अधिक ज्ञान रखता था। घर में मेरे माता तथा भाई मुझको किसी अन्य विशेष विभाग में नौकरी कर लेने के लिए आग्रह करते; परन्तु मैं चिकित्सा-क्षेत्र में ही लगे रहने का दृढ़ प्रतिज्ञ था, क्योंकि यह क्षेत्र मुझको बहुत अधिक पसन्द था।

मेडिकल स्कूल में प्रथम वर्ष के अध्ययन के समय ही मैं उन प्रश्नों के उत्तर दे सकता था जिनके उत्तर अन्तिम वर्ष के छात्र भी नहीं दे सकते। प्रथम वर्ष में मैंने डा. तिरुमुडि स्वामी से ओस्लर्स मेडिसिन का अध्ययन किया। यह मेरे लिए अनोखा सुअवसर था। लेफ्टीनेन्ट कर्नल हाजेल राइट, आई. एम. एस. मुझे बहुत प्यार करते थे। डा. ज्ञानम् मुझको संस्था का आभूषण बतलाते थे। छुट्टियों में भी मैं अस्पताल में रहता तथा बहुत से नये विषयों को सीखता ।

मैंने मेडिकल पत्र निकालने की योजना बनायी और उसके लिए पूरी तैयारी कर ली। प्रारम्भिक व्यय के लिए मैंने माता जी से १०० रुपये लिये। मैं आयुर्वेदिक लेखों के लिए आयुर्वेदाचार्यों से भी प्रार्थना करता था और स्वयं भी विभिन्न विषयों पर लेख लिख कर उनको विभिन्न नामों से 'अम्ब्रोसिया' में प्रकाशित करता था।

१९०९ में इसके प्रारम्भ के पश्चात् ही शीघ्र इस पत्रिका की ख्याति बढ़ गयी। प्रख्यात व्यक्तियों के लेख मिलने लगे। एक बार मेरी माँ कोई पर्व मनाना चाहती थी जिसके लिए एक सौ पचास रुपयों की आवश्यकता थी, मैं उतने रुपये उन्हें दे सका।

चार वर्षों तक 'अम्ब्रोसिया' पत्रिका सफलतापूर्वक चलती रही। इसके पश्चात में मलाया चला गया। यह पत्रिका बत्तीस पृष्ठों की डेमी क्वार्टो साइज की थी। इसके लेख बहुत ही आकर्षक तथा चिकित्सकों के लिए अति उपयोगी थे। 'अम्ब्रोसिया' के पृष्ठों में विशेष आध्यात्मिक स्पर्श को आँका जा सकता है। दूसरी चिकित्सा-सम्बन्धी पत्रिकाओं से भिन्न इस पत्रिका का दृष्टिकोण पुराकालीन ऋषियों के सिद्धान्तों पर ही आधारित था; क्योंकि युवावस्था से ही मुझमें आध्यात्मिकता भरी हुई थी।

जीवन के संघर्ष

मैं पत्रिका चलाने मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं था। मैंने अपने लिए तथा पत्रिका को स्थायी बनाने के लिए नौकरी करना चाहता था। अतः मैं त्रिचिन्नापल्ली को छोड़ कर मद्रास में डा. हालर्स फार्मेसी में काम करने चला गया। यहाँ पर मुझको लेखा का काम सँभालना होता था । औषधियाँ बाँटना तथा रोगियों की सेवा-सुश्रूषा आदि का भार भी मुझ पर ही था। मुझे बहुत ही परिश्रम करना होता था। मैं यह सब करने के पश्चात् भी 'अम्ब्रोसिया' के लिए

सम्पादकीय लिखने तथा उसके व्यवस्थापन के लिए समय निकाल लेता था। मैं त्रिचिन्नापल्ली से पुरानी प्रतियाँ ला कर उच्च अधिकारियों तथा आफिसरों को बाँट दिया करता था, ताकि उनकी सहायता मिल सके। मैं अन्यत्र कहीं और अच्छी परिस्थिति को प्राप्त करने की खोज में था। अन्ततः मैंने मलाया के स्टेट्स सेटिलमेन्ट्स में अपना भाग्य आजमाना चाहा। मैंने अपने मित्र डा. आयंगर को लिखा, जिनका औषधालय कुछ वर्ष के लिए डा. हालर के निकट ही था तथा बाद में वे सिगापुर में जा कर बस गये थे। मैं 'एस एस. तारा' जहाज द्वारा मद्रास से चल पड़ा।

मैं इतनी लम्बी यात्राओं का अभ्यस्त न था, इन बातों से बिलकुल ही अनभिज्ञ था कि रास्ते के लिए मुझको क्या-क्या भोजन अपने साथ रखना चाहिए और मलाया में काम तथा अपना जीवन आरम्भ करने के लिए क्या-क्या तैयारी करनी चाहिए, या कितने रुपयों की आवश्यकता होगी? माता जी ने प्यारपूर्वक मिठाइयों का बण्डल दिया जो मैं अपने साथ में ले चला। मैं कट्टर धर्मपरायण परिवार का था; अतः जहाज में आमिषाहार के भय से कॉफी परिमाण में मिठाइयाँ साथ में बाँध लीं। युवावस्था में मैं मिठाइयाँ बहुत पसन्द करता था। सारी यात्रा-भर मैं मिठाइयों पर ही रहा था मैंने रास्ते में प्रचुर जल पिया। इस आहार का अनभ्यस्त होने के कारण में अर्धमृत-सी अवस्था में ही सिंगापुर पहुँचा।

अपने को अनिश्चितता के सागर में फेंक देना एक बहुत बड़ा साहसिक कार्य था। विषम परिस्थितियों के आने पर मेरे पास वापस लौटने को भी रुपया न था। फिर भी मेरी आशा प्रबल थी और अपना भाग्य आजमाने के लिए मैं कमर कस कर तैयार हो गया। प्रबल संकल्प-शक्ति तथा दृढ़ निश्चय ने मेरे जीवन तथा आध्यात्मिक आचरण को ढालने में मेरी बहुत सहायता की। मलाया के उस सुदूर देश में मेरे लिए कोई सरल मार्ग तो तैयार था नहीं। मैं अज्ञात था, कोई मित्र भी नहीं था। साथ-ही-साथ कोई आर्थिक सुरक्षा भी नहीं थी। मुझे इस प्रकार की विपन्नावस्था से ही अपना जीवन आरम्भ करना था तथा आरम्भ में ही निराशापूर्ण घटनाओं का सामना करना था, परन्तु बाद में घटनाएँ मेरे अनुकूल हो चलीं तथा मेरी स्थिति सुरक्षित हो चली।

मलाया पर उतरते ही मैं अपने मित्र डा. आयंकर के मकान की ओर चला। उन्होंने अपने जान-पहचान वाले एक डा. हेराल्ड पार्सन्स के लिए एक परिचय-पत्र दिया। जब मैंने सेरेम्बन, जहाँ पर कि वे डाक्टर का काम करते थे, पहुँचा तो वहाँ पर डा. पार्सन्स उपस्थित थे। इस बीच मेरे पास जो भी रुपये थे, वे अब समाप्त हो गये। मैंने कोई-न-कोई नौकरी प्राप्त करने के लिए काफी आशावादी था। डा. पार्सन्स को किसी भी सहायक की आवश्यकता नहीं थी। मैंने डाक्टर को इस प्रकार प्रभावित किया कि वे मुझको पास वाले रबर स्टेट के मैनेजर ए. जी. रोबिन्स के पास ले गये, वहाँ उनका अपना अस्पताल था।

भाग्यवश उस समय ए. जी. रोबिन्स स्टेट के अस्पताल के लिए एक सहायक की खोज में थे। वे बहुत ही क्रोधी स्वभाव वाले तथा भयकर मनुष्य थे। उनकी विशाल आकृति थी तथा वे बहुत लम्बे-चौड़े आकार के थे। उन्होंने पूछा- "क्या तुम स्वयं भी एक अस्पताल चला सकते हो ?" मैंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं तीन अस्पताल चला सकता हूँ।" मैं तत्काल ही काम पर रख लिया गया। एक स्थानीय भारतीय ने मुझको बतलाया कि मुझे १०० डालर से कम नहीं लेने चाहिए। मि. रोबिन्स ने मुझको १५० डालर आरम्भ से ही देने की स्वीकृति दे दी।

स्टेट हास्पिटल जिस डाक्टर के अधीन था, उसको छोड़े हुए अधिक समय नहीं हुआ था। लोगों ने मुझको बतलाया कि वह पूर्ण योग्य डाक्टर नहीं था। मैंने शीघ्र ही अस्पताल के साधनों तथा औषधि के स्टाक का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहाँ भी मेरे लिए परिश्रम इन्तजार कर रहा था। मुझको वैसे ही दवाइयाँ बाँटनी होती थीं, खर्चे का हिसाब भी रखना होता था तथा रोगियों की सेवा भी करनी होती थी जिस प्रकार मद्रास में डा. हालर के लिए किया करता था। असाधारण बाधाएँ मुझको अपना शिकार बनाने लगीं तथा मैंने इस्तीफा देने का इरादा किया; परन्तु मि. ए. जी. रोबिन्स ने मुझको ऐसा करने की अनुमति नहीं दी ।

बाद में जब मैं जोहोर अस्पताल में था, तब मेरे सहायक मेरी दयालुता और ढिलाई का बहुत लाभ उठाने लगे तथा अपने कर्तव्यों के प्रति बहुत ही शिथिल बने रहते थे। मुझको उनके भी सारे कार्य करने पड़ते थे। मैं काम के बोझ के सम्बन्ध में कुछ कह भी नहीं सकता था, अन्यथा वे सब हमारे व्यवस्थापक की कठोरता के शिकार बन जाते । कार्य-भार की समस्या मलाया में कभी भी सुलझी नहीं। फिर भी मैं कार्य को उसी तरह से करता रहा। उन लोगों के कर्तव्य-भार को भी मैं वहन करता रहा।

मैं सेरेम्बन के निकट स्टेट हास्पिटल में लगभग सात वर्षों तक कार्य करता रहा, उसके बाद डा. पार्सन्स की अनुमति के अनुसार मैं जोहोर मेडिकल आफिस लिमिटेड में सम्मिलित हुआ । तब तक डा. पार्सन्स युद्ध-सर्विस से लौट आये थे। संन्यास लेने से पहले तीन वर्षों तक मैंने जोहोर में सेवा की।

मलाया में मैं गरीब जनता, सैकड़ों मजदूरों तथा नागरिकों के सम्पर्क में आया। मैंने मलाया की भाषा सीखी तथा वहाँ के निवासियों से उसी भाषा में बात की।

मैंने स्टेट के श्रमिकों की अच्छी प्रकार से सेवा की तथा उनके प्रेम का पात्र बना। मुझे सेवा में अत्यधिक रुचि थी। इस क्षण यदि मैं अस्पताल में होता, तो दूसरे क्षण किसी गरीब के घर उसकी तथा उसके परिवार की सेवा करता होता। उस अस्पताल में विजिटिंग डाक्टर डा. पार्सन्स मुझको बहुत चाहते थे। मैं उनके भी व्यक्तिगत कामों में सहायता दे दिया करता था। समय-समय पर मैं अपनी कमाई को मित्रों तथा रोगियों की सेवा में लगा दिया करता था, यहाँ तक कि मुझको कई बार अपनी कीमती वस्तुओं को भी गिरवी रखना पड़ जाता था।

मैं व्यवस्थापक तथा श्रमिक-दोनों का ही मित्र था। यदि मेहतर हड़ताल कर देते, तो स्टेट का मैनेजर मेरे ही पास आता था। मैं यहाँ-वहाँ दौड़-भाग करके उनको काम पर जुटा देता था। अपने अस्पताल के अतिरिक्त मैं दूसरे अस्पतालों में भी जाता था तथा वहाँ बैक्टीरियोलॉजी तथा अन्य विषय के ज्ञान भी प्राप्त करता था। उस समय कोई भी अँगरेजी मेडिकल की पुस्तक ऐसी न थी जो कि मैंने अध्ययन करके आत्मसात् न कर ली हो। इसके अतिरिक्त मैं अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की भी सहायता किया करता था। दिन में कुछ समय उनको प्रशिक्षण दिया करता था और तब उनको एक पत्र के साथ दूसरे अस्पतालों में भेज दिया करता था। अपने पास से रेलवे किराया तथा अन्य खर्चों के लिए रुपये भी देता था। शीघ्र ही मैं सेरेम्बन तथा जोहोर में विख्यात हो गया। बैंक मैनेजर छुट्टियों में भी मेरे चेकों के लिए मुझको रुपये देने के लिए तैयार रहता था। मिलनसारिता तथा सेवा के कारण मैं हर व्यक्ति का मित्र बन गया। मुझे उन्नति प्राप्त हुई तथा मेरी वैयक्तिक आय तथा वेतन में वृद्धि हो गयी। यह सारी सफलता मुझे एक दिन में ही प्राप्त नहीं हुई। इसका अर्थ था कठिन श्रम, अदम्य संलग्नता, दृढ़ प्रयास तथा धर्म एवं सत्य के सिद्धान्तों में अविचल विश्वास और साथ-ही-साथ दैनिक जीवन में उनका आचरण ।

मलाया के जीवन में मैंने जन-स्वास्थ्य (पब्लिक हेल्थ) पर 'मलाया ट्रिब्यून' सिंगापुर के लिए बहुत लेख दिये।

मानव-सेवा के प्रथम पाठ

मैंने अनुवीक्षणीय अध्ययन तथा उष्णकटिबन्धीय औषधि के क्षेत्र में विशेष दिलचस्पी ली। इसके बाद मैं सिंगापुर के निकट जोहोर बारू में गया तथा वहाँ तीन वर्षों तक रहा। डा. पार्सन्स, ग्रीन, गार्लिक तथा ग्लेनी मेरी बहुत प्रशंसा किया करते थे तथा मेरी दक्षता, अनुकूल तथा उपयुक्त स्वभाव के कारण मुझे औषधि-ज्ञान के लिए बहुत ही योग्य बतलाया करते थे। मैं सुखी, प्रसन्न तथा सन्तुष्ट था। मैं सभी रोगियों की सेवा सावधानी के साथ किया करता था। मैं कभी भी उन लोगों से फीस आदि नहीं लेता था। उनके रोग तथा कष्टों को दूर होते देख मुझको

हार्दिक प्रसन्नता होती थी। लोगों की सेवा करना तथा जो-कुछ भी मेरे पास हो, उसमें से दूसरों को हिस्सा देना ही मेरा जन्मजात स्वभाव है।

मैं अपने विनोद से लोगों को प्रसन्न रखता और रोगियों को प्रिय तथा साहसपूर्ण शब्दों के द्वारा प्रोत्साहित करता था। इस तरह रोगी नव-स्वास्थ्य, शक्ति, आशा तथा स्फूर्ति का तुरन्त ही अनुभव करने लगते थे। रोगियों के चमत्कारिक उपचार के कारण लोगों ने यह सर्वत्र घोषित कर दिया कि मुझे ईश्वर का विशेष वरदान प्राप्त है तथा आकर्षक एवं भव्य व्यक्तित्व से विभूषित बहुत ही दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण डाक्टर के रूप में मेरी सराहना की। उग्र रोगों के इलाज में मैं रात्रि को भी जागरण करता था। रोगियों के साथ रह कर मैं उनकी भावनाओं को समझता तथा उनके कष्टों को दूर करने के लिए अपनी ओर से पूरी-पूरी कोशिश करता था।

मैं रायल इन्स्टीट्यूट पब्लिक हेल्थ, लन्दन; रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन तथा रायल सैनेटरी इन्स्टीट्यूट का भी सहयोगी बन गया। मलाया में मैंने कई औषधि-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित कीं, 'घरेलू दवाइयाँ', 'फल तथा स्वास्थ्य', 'रोग तथा उनके तमिल नाम', 'जन-स्वास्थ्य पर चौदह भाषण' आदि। मैंने बहुत से लोगों को आश्रय प्रदान किया तथा उनको भोजन-वस्त्र दे कर कर नौकरी दिलवायी।

मैं अपने विचारों में उदार था। संन्यास की चेतना मुझमें गहरी गड़ी हुई थी। संकीर्णता, कुटिलता तथा पिशुनता से मैं बहुत दूर था। मैं बहुत ही सरल, स्पष्टवक्ता तथा खुले हृदय का था। मैंने अस्पताल में बहुत से युवकों को ट्रेनिग दी तथा उनको बहुत से स्टेट अस्पतालों में भर्ती करा दिया। मैंने अपनी सारी शक्ति दिन-रात लोगों के दुःख दूर करने में, रोगियों तथा गरीबों की सेवा करने में लगी दी। इस प्रकार की निष्काम सेवा से मेरा मन तथा हृदय-दोनों शुद्ध हो गये तथा मेरा आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त हो चला।

युवावस्था में मुझको अच्छी पोशाकों, सोने, चाँदी तथा चन्दन की बनी हुई विविध वस्तुओं के संग्रह करने का शौक था। कभी-कभी मैं सोने की अँगूठी तथा जंजीर खरीदता और सबको एक बार ही पहन लेता। जब मैं दूसरी दुकान में कभी घुसता, तो चुनाव के लिए समय बेकार नहीं गँवाता था। जो कुछ भी देखता, उन सबको एकत्र कर लेता। मैं मूल्य चुकाने में भी विलम्ब नहीं करता था। मैं बिना हिचक के ही दुकानदार के बिल चुका देता था। अब भी जब कभी किसी पुस्तक की दुकान पर चला जाता हूँ, तो कोई-न-कोई पुस्तक खरीद कर आश्रम के 'योग-वेदान्त अरण्य अकादमी पुस्तकालय' के छात्रों के लिए रख लेता हूँ।

मेरे पास बहुत से हैट थे। कभी-कभी मैं राजपूत राजकुमार की भाँति टोपी पहनता तथा रेशमी पगड़ी बाँधा करता था।

मैंने दीर्घ काल तक अपना भोजन स्वयं बनाया था। सदा अतिथियों का सम्मान करता था तथा बड़े प्रेम से उनकी सेवा किया करता था। मलाया तो प्रलोभन की भूमि ही थी; परन्तु मुझे कुछ भी विचलित न कर सका। मैं स्फटिक की भाँति शुद्ध था। मैं नित्य पूजा, प्रार्थना तथा स्वाध्याय किया करता था। मैं नन्दन-चरित्र का अभिनय किया करता था तथा हारमोनियम पर भजन, कीर्तन आदि गाया करता था। मलाया में भी मैंने अनाहत लय-योग तथा स्वर-साधना का अभ्यास किया।

द्वितीय अध्याय

अमृतत्व का आह्वान

नवीन दृष्टिकोण का उदय

"क्या जीवन में नित्य कार्यालय जाने तथा खाने-पीने के अतिरिक्त अन्य कोई उच्चतर लक्ष्य नहीं है? क्या इन परिवर्तनशील तथा भ्रामक सुखों से बढ़ कर नित्य-सुख का कोई उच्चतर रूप नहीं है? कितना अनिश्चित है यह सांसारिक जीवन ? अनेक रोगों, शोकों तथा दुखों से, निराशाओं तथा भयों से भरा हुआ यह जीवन कितना सशंकित है? यह नाम-रूपों का जगत् सदा परिवर्तनशील है। समय भागा जा रहा है। इस जगत् में सुख की सारी आशाएँ दुःख, निराशा तथा शोक में ही परिसमाप्त होती है।"

ऐसे ही विचार सदा मेरे मन में उठा करते थे। डाक्टरी व्यवसाय के द्वारा मुझे इस जगत् के दुःखों का प्रचुर प्रमाण मिला। सहानुभूतिपूर्ण हृदय वाले वीतरागी के लिए यह जगत् सर्वथा दुःखमय है। केवल धन-संचय से मनुष्य सच्चा तथा शाश्वत सुख नहीं पा सकता। निष्काम कर्म के द्वारा हृदय की शुद्धि के अनन्तर मुझमें नयी दृष्टि का उदय हुआ। मुझे यह पक्का विश्वास हो चला कि वैसा धाम-ईश्वरीय वैभव, शुद्धता तथा दिव्य महिमा का पवित्र धाम-अवश्य होगा जहाँ मनुष्य परम सुख, सुरक्षा, पूर्ण शान्ति तथा चिरन्तन सुख को आत्म-साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त कर सके।

मैं सदैव इस इस श्रुति-वाक्य को याद रखता : "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्"-जिस दिन मनुष्य में वैराग्य उत्पन्न हो, उसी दिन उसको चाहिए कि वह इस संसार का परित्याग कर डाले। मैं सदा इस बात पर विचार करता, "श्रवणाय संन्यास कुर्यात्" अर्थात् श्रुतियों को सुनने के लिए मनुष्य को संन्यास धारण करना चाहिए। धर्मग्रन्थों के शब्द अत्यन्त मूल्यवान् होते हैं। मैंने सुख, आराम तथा विलास के जीवन का परित्याग किया तथा प्रार्थना, ध्यान, स्वाध्याय तथा समस्त जगत् की उच्चतर सेवा के लिए एक आदर्श केन्द्र की खोज में भारतवर्ष आ पहुँचा।

१९२३ में मैंने अर्थोपार्जन तथा विलासमय जीवन का परित्याग कर संन्यास-जीवन को ग्रहण कर लिया-सत्य का सच्चा अन्वेषक बन गया। मैंने अपनी सारी सामग्री को अपने मित्र के पास मलाया में ही छोड़ दिया। मलाया से एक स्कूल के शिक्षक १९३९ में आश्रम आये थे। उन्होंने बतलाया कि 'मि. एस. ने आपके लौटने की प्रतीक्षा में अब तक आपकी सामग्री सुरक्षित रखी हुई है।'

परिव्राजक के रूप में

सिंगापुर से मैं वाराणसी पहुँचा। वहाँ मैंने भगवान् शिव के दर्शन किये। तत्पश्चात् मैं नासिक, पूना तथा अन्य प्रसिद्ध धर्म-स्थलों के लिए चल दिया। पूना से मैं ७० मील पैदल चल कर पण्ढरपुर पहुँचा। मार्ग में खेदगाँव के योगी स्वामी नारायण जी के आश्रम में कुछ दिनों तक ठहर गया। तब मैं चार महीने तक घालज में चन्द्रभागा के तट पर ठहरा रहा। अपनी निरन्तर यात्रा से मैं सीख गया कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ निर्वाह करना चाहिए।

मैंने योगियों, महात्माओं तथा महापुरुषों के जीवन से बहुत शिक्षा प्राप्त की। मुझमें निहित सेवा-भाव ने मुझे सर्वत्र शान्तिमय जीवन-यापन में समर्थ बनाया । परिव्राजक-रूप में यात्रा करने से मुझे तितिक्षा, समदृष्टि, सुख-दु ख में मन का समत्व आदि गुणों के अर्जन में सहायता मिली। मैं बहुत से महात्माओं को मिला तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ प्राप्त कीं। कई दिनों तक मुझे बिना भोजन के ही रहना पड़ता और मीलों तक पैदल भ्रमण करना पड़ता था। मुस्कान के साथ मैंने सारी बाधाओं का सामना किया।

तीर्थ-यात्रा से लाभ कैसे उठाया जाये ?

महात्मा तथा भक्त गण तीर्थ-यात्रा के लिए निकल कर अपनी आध्यात्मिक साधना के मध्य कई धार्मिक स्थानों के दर्शन करते हैं। उनके उद्देश्य भिन्न-भिन्न रहते हैं। विभिन्न स्थानों में वे विभिन्न मनुष्यों के सम्पर्क में आते हैं तथा उनको अपने ज्ञान तथा अनुभव से लाभान्वित करके उनका पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे ध्यान के लिए ऐसे उपयुक्त स्थानों को चुनते हैं, जहाँ वे अपनी उग्र साधना के लिए प्रेरणा तथा सुविधा प्राप्त कर सकें। वे गृहस्थों की शंकाओं का समाधान करते, उनको अपना आशीर्वाद देते तथा उनका पथ-प्रदर्शन करते, तीर्थ-यात्री महात्माओं के दर्शन करते तथा अपनी शंकाओं का समाधान करवाते हैं। वे साधुओं तथा तीर्थों के दर्शन कर प्रेरणा तथा विभिन्न व्यक्तियों से मिल कर दैवी गुणों का विकास करते हैं। वे सरल जीवन यापन तथा तितिक्षा का प्रशिक्षण पाते हैं।

कुछ लोग तो अपना सारा जीवन ही तीर्थ-यात्रा में बिताते हैं। वे कदिरकामम (लंका) से कैलास पर्वत (तिब्बत) तक, पुरी से द्वारका तक, अमरनाथ (कश्मीर) से प्रयाग तक तथा वाराणसी से रामेश्वरम् तक की यात्राएँ करते रहते हैं।

मैंने बहुतों को वृद्ध होने पर पश्चात्ताप करते देखा है कि उन्होंने अपनी सारी युवावस्था यों ही भ्रमण में गंवा दी। मैंने गुरु की खोज, एकान्तवास तथा उग्र साधना के लिए आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त किसी अनुकूल स्थान की खोज में कुछ दिन परिव्राजक जीवन व्यतीत किया।

गुरु की आवश्यकता

आध्यात्मिक मार्ग अनेक बाधाओं से आक्रान्त है। गुरु ही कुशलतापूर्वक साधकों का पथ-प्रदर्शन करता है तथा सारी कठिनाइयों को दूर करता है। वह साधकों में प्रेरणा भरता है तथा अपने आशीर्वाद के द्वारा उनमें आध्यात्मिक शक्ति का संचार करता है। गुरु, ईश्वर, तीर्थ तथा मन्त्र एक ही हैं। अपरिपक्व मन वाले रागात्मक प्रकृति के सांसारिक लोगों के वासनापरक संस्कारों पर विजय पाने के लिए गुरु से व्यक्तिगत सम्पर्क एवं सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

मैं गुरु की खोज में ऋषिकेश पहुँचा तथा ईश्वर से उसकी कृपा के लिए प्रार्थना की। बहुत से अभिमानी साधक कहते हैं- "मुझे गुरु की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर ही मेरा गुरु है।" वे स्वयं ही वस्त्र रंग कर स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। वे बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ सामने आने पर घबड़ा जाते हैं। मैं धर्मग्रन्थों तथा ऋषियों के नियमों एवं अनुशासनों की अवहेलना पसन्द नहीं करता। जब हृदय में परिवर्तन हो, तो बाह्य रूप में भी परिवर्तन होना ही चाहिए। दुर्बल एवं डरपोक जन संन्यासी की महिमा तथा स्वतन्त्रता की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं। १ जून १९२४ को परमहंस स्वामी विश्वानन्द सरस्वती के पवित्र हाथों से गंगा के किनारे मैंने संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। मेरे आचार्य गुरु श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने कैलास-आश्रम में मेरा विरजा-होम-संस्कार कराया।

प्रारम्भ में वैयक्तिक गुरु की आवश्यकता है। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बही दिखला सकता है जो गुरुओं का गुरु है। वही आपके मार्ग की बाधाओं तथा प्रलोभनों को दूर करेगा। आत्म-साक्षात्कार एक अतीत अनुभव है। आप आत्मज्ञान-प्राप्त साधु-महात्माओं के आप्त वाक्यों में अटूट श्रद्धा तथा विश्वास रख कर ही आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति कर सकते हैं।

शिष्य के लिए गुरु की कृपा आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिष्य आलसी बन कर इस आशा में बैठ जाये कि गुरु अपने-आप ही उसको समाधि में पहुँचा देगा। गुरु स्वयं साधक के लिए साधना नहीं कर सकता। गुरु के कमण्डलु के जल की बूँद से आध्यात्मिक प्राप्ति की आशा तो मूर्खता ही है। गुरु साधक का पथ-प्रदर्शन कर सकता है, शंकाओं का निवारण कर सकता है, मार्ग प्रशस्त कर सकता है, बाधाओं एवं प्रलोभनों को दूर भगा कर उसके पथ को प्रकाशित कर सकता है; परन्तु अपने मार्ग पर कदम रख कर स्वयं साधक को ही चलना होता है।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु तथा शास्त्रों के उपदेशों में अटूट एवं निश्चल श्रद्धा, तीव्र तथा दृढ़ वैराग्य, मुमुक्षुत्व, दृढ़ संकल्प, लौह निश्चय, अदम्य धैर्य, अविचल संलग्नता, घड़ी के समान नियमितता तथा शिशुवत् सरलता की आवश्यकता है।

यदि आपका कोई गुरु नहीं है तो आप भगवान् कृष्ण, शिव या भगवान् राम अथवा ईसामसीह को अपना गुरु मान लें। उनकी प्रार्थना करें, उनका ध्यान करें तथा उनके नाम का कीर्तन करें। वे आपके अनुकूल गुरु भेज देंगे।

यात्रा की समाप्ति

मैं जून १९२४ को ऋषिकेश पहुँचा तथा उसको अपना चिर-अभिलषित स्थान पाया। मेरे गुरु ने दीक्षा के साथ प्रचुर आशीर्वाद तथा आध्यात्मिक बल प्रदान किया। गुरु केवल इतना ही कर सकते हैं। तीव्र एवं कठोर

साधना तो साधक को ही करनी पड़ती है। देहरादून जिले में ऋषिकेश रेलवे स्टेशन है। यह बहुत से साधुओं का पवित्र निवास-स्थान है। यहाँ सारे साधुओं, योगियों तथा साधकों को निःशुल्क भोजन मिलता है। इसके लिए यहाँ पर एक क्षेत्र है। वे कहीं भी किसी धर्मशाला, झोपड़ी, कुटिया अथवा स्व-निर्मित कुटी में निवास कर सकते हैं। ऋषिकेश के निकट बहुत से मनोरम स्थान हैं जैसे ब्रह्मपुरी, नीलकण्ठ, वसिष्ठ-गुहा, तपोवन आदि। ऐसे स्थानों में रहने वाले साधु १५ दिन में एक बार सूखा अन्न प्राप्त करते हैं, जिससे वे अपना भोजन स्वयं ही तैयार कर लेते हैं।

हिमालय का दृश्य मनोहर तथा प्रेरणादायक है। पवित्र गंगा तो वरदान-रूप ही है। गंगा के किनारे चट्टान अथवा टीले पर बैठ कर मनुष्य घण्टों तक ध्यान कर सकते हैं। कुछ पुस्तकालय भी हैं जहाँ से हम संस्कृत, अँगरेजी तथा हिन्दी की योग-सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं। कुछ विद्वान् महात्मा नियमित दैनिक कक्षाएँ चलाते हैं तथा योग्य साधकों को वैयक्तिक रूप से पढ़ाते हैं। इस स्थान की जलवायु अच्छी है-जाड़े में (नवम्बर से मार्च तक) कुछ अधिक जाड़ा तथा गरमी में (अप्रैल से जून तक) कुछ अधिक गरमी रहती है। रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक अस्पताल भी हैं। इस प्रकार मैं ऋषिकेश को उग्र एवं अबाध आध्यात्मिक साधना के हेतु सभी सत्यखोजी साधकों के लिए उपयुक्त स्थान समझता हूँ।

तृतीय अध्याय

दिव्य खजाने का वितरण

मनमुखी साधनाएँ

कुछ महात्मा आजीवन ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन तथा स्वाध्याय करते रहते हैं तथा योग और वेदान्त के सूक्ष्म तत्त्वों पर गरमा-गरम बहस करते रहते हैं। कुछ योगी सिद्धि-प्राप्ति की आशा में हठयोग में ही उलझे रहते हैं। वे ऐसे अभ्यासों में लगे रहते हैं, जिनमें शरीर को यातना सहनी पड़ती है। कुछ सिद्धियों तथा चमत्कारों का प्रदर्शन करने के लिए आध्यात्मिक शक्ति हेतु हठयोग और तन्त्रशास्त्र की ओर आकृष्ट होते हैं। भक्त गण अपना सारा समय जप तथा कीर्तन में बिताते हैं और ईश्वर के विरह में घण्टों तक रोते रहते हैं। इस वर्ग में आप कुछ शिक्षित लोगों को भी पायेंगे, जो अपना सारा समय प्रेरणात्मक लेखों तथा भाषणों के लिखने में ही बिता देते हैं। वे

विश्व-भ्रमण की भी योजनाएँ बनाते तथा तैयारी करते हैं। मुझे इन सभी महात्माओं के प्रति अति-प्रेम तथा सम्मान है कि वे विभिन्न दिशाओं में सुचारुरूपेण अनुसन्धान कर रहे हैं। क्या वे सभी पूर्णता प्राप्त करने में सफल होते हैं?

मैंने देखा कि उन्हें समुचित सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, योग्य व्यक्ति का पथ-प्रदर्शन प्राप्त नहीं है। वे अपनी साधना में क्रमिक तथा स्थिर नहीं रह पाते। योजना बनाते रहने की प्रकृति के फल-स्वरूप उनके दैनिक अभ्यास में भी परिवर्तन आता रहता है। वे या तो अपनी आवश्यकताओं पर उचित से अधिक ध्यान देने लगते हैं अथवा अपने स्वास्थ्य के प्रति बिलकुल ही उदासीन हो जाते हैं। वे सभी भविष्य की चिन्ता करते हुए सिद्धियों, चमत्कारों और नाम तथा यश के पीछे पड़े रहते हैं। इससे उनका अहंकार ही स्थूल बनता है। महात्माओं की साधना के रूपों के गम्भीर अध्ययन से मेरी आँखें खुल गयीं तथा ठीक मार्ग में तीव्र तथा उग्र साधना के लिए प्रेरणा मिली। मैंने ईश्वर-कृपा की अनुभूति की, अन्तर से बल तथा पथ-प्रदर्शन प्राप्त किया। मैंने सर्वांगीण विकास का मार्ग ढूँढ़ निकाला। मेरे जीवन का लक्ष्य था आत्म- साक्षात्कार। मैंने अपनी सारी शक्ति और समय अध्ययन, सेवा तथा साधना में लगा दिया।

मेरी समन्वय-साधना की विधि

रोगियों, निर्धनों तथा महात्माओं की सेवा करने से हृदय शुद्ध होता है। सारे दैवी गुणों-जैसे करुणा, दया, सहानुभूति, उदारता आदि के विकास के लिए, यह सुन्दर क्षेत्र है। इससे अहंकार, स्वार्थ, घृणा, लोभ, क्रोध, द्वेष इत्यादि दुर्गुणों एवं विकारों को नष्ट करने में सहायता मिलती है। महात्माओं तथा निर्धन ग्रामीणों को उचित उपचार की सुविधा प्राप्त नहीं थी। बदरीनाथ तथा केदारनाथ जाने वाले सहस्रों यात्रियों को औषध की आवश्यकता भी होती थी; अतः मैंने 'सत्य सेवाश्रम' नामक एक छोटा-सा औषधालय चलाया जो लक्ष्मणझूला में बदरी-केदार के पैदल रास्ते में पड़ता था। मैं बड़े प्रेम तथा श्रद्धा के साथ महात्माओं की सेवा किया करता था। मैंने गम्भीर रोगियों के लिए दूध तथा अन्य विशेष आहार का भी प्रबन्ध किया था। समुचित निष्काम सेवा-भाव से आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र ही हो जाती है।

उच्च स्तरीय स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए मैंने आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बन्ध के अभ्यास किये। मैं सायंकाल बहुत दूर तक टहलता हुआ चला जाता था। दण्ड, बैठक आदि कुछ शारीरिक व्यायाम भी कर लिया करता था। मैं सरल जीवन, उच्च विचार, लघु आहार, गम्भीर अध्ययन, मौन, ध्यान तथा नियमित प्रार्थना पर विशेष बल देता था। मैं एकान्त-प्रेमी था तथा मौन व्रत किया करता था। मैं किसी का संग तथा व्यर्थ की गपशप करना पसन्द नहीं करता था। मुनिकीरेती में रामाश्रम-पुस्तकालय से मैं कुछ पुस्तकें अध्ययन के लिए ले कर नित्य-प्रति उनके अध्ययन में कुछ समय लगाता था। मैं अपने पास शब्दकोष रखता तथा कठिन शब्दों का अर्थ उसमें देख लिया करता था। आराम तथा शिथिलन के द्वारा भी मुझे साधना हेतु पर्याप्त बल मिलता था। मैं कुछ महात्माओं के निकट-सम्पर्क में था, परन्तु कभी भी विवाद अथव बहस में नहीं पड़ता था। आत्म-विश्लेषण तथा अन्तर्निरीक्षण ही मेरे पथ-प्रदर्शक थे।

प्रार्थना तथा ध्यान में अधिक समय लगाने के विचार से मैं स्वर्गाश्रम में चला आया। मैं एक छोटे-से कुटीर में रहने लगा जो आठ फुट चौड़ा, दश फुट लम्बा था तथा सामने एक छोटा-सा बरामदा था। काली कमली वाले क्षेत्र में भोजन करता था। आजकल उस कुटीर की क्रम संख्या १११ है तथा उसके साथ कुछ और कमरे भी बन गये हैं। मैंने अपनी साधना तथा उस स्थान के रोगियों की सेवा जारी रखी। मैं प्रतिदिन एक घण्टे के लिए कुटीर में रोगी महात्माओं की सेवा के लिए जाता तथा उनका हाल पूछ कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। मैं अपना अधिक समय ध्यान तथा विभिन्न प्रकार के योगों की साधना में लगाता था। मेरे अनुभव मेरी कई पुस्तकों में साधकों के सहायतार्थ प्रकाशित हो चुके हैं। मैं अपने विचारों तथा अनुभवों को जगत्-हित में एवं सत्य की खोज में

प्रयत्नशील साधकों के लाभ के लिए, शीघ्र ही प्रकाशित करा दिया करता था। साधारणत बड़े महात्मा भी अपने दुर्लभ ज्ञान को गुप्त ही रखते थे और केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियों पर ही प्रकट करते थे।

स्वर्गाश्रम का जीवन

मैं दाँत साफ करने, कपड़े धोने तथा स्नान करने में अधिक समय नहीं लगाता था। साधना, अध्ययन तथा सेवा-कार्य से थोड़ा भी समय पा कर मैं यह सब निबटा देता था। मैं कभी किसी पर निर्भर नहीं रहता, यद्यपि कुछ शिष्य सदा मेरी सेवा के लिए उत्सुक रहते थे। मैंने अध्ययन, नोट्स लिखना, साधकों से पत्र-व्यवहार, व्यायाम, भिक्षा लेने के लिए जाना इत्यादि सभी कामों के लिए समय निश्चित कर लिया था। शनै - शनै बड़ी संख्या में लोग मेरे पास आने लगे, जिससे मेरा नियमित कार्यक्रम अति-प्रभावित होने लगा। क्षेत्र के व्यवस्थापकों की अनुमति से मैंने अपने कुटीर के चारों ओर तार की बाड़ लगा दी तथा द्वार को ताले से बन्द कर दिया। मैं दार्शनिक वादों से दर्शकों के सामने प्रदर्शन नहीं करता था। मैं हर व्यक्ति को साधना के सम्बन्ध में पाँच मिनट व्यावहारिक सकेत दे कर विदा कर दिया करता था। अपने अहाते के प्रवेश-द्वार पर मैंने एक सूचना पट्ट लगा दिया था- 'मिलने का समय ४ से ५ बजे शाम तक, एक बार में पाँच मिनट के लिए ही।' जाड़े के दिनों में भक्त अधिक संख्या में नहीं आते थे। इन दिनों में अपने कुटीर के सामने टहलता और भजन-कीर्तन गाता था। कभी-कभी कई दिनों तक मैं कुटीर के बाहर नहीं आता था। भोजन के लिए दैनिक भिक्षा में से कुछ सूखी रोटियाँ एकत्र कर लिया करता था। इस प्रकार उग्र साधना ही मेरा लक्ष्य था।

सायंकाल में गंगा के बालुकामय तट पर किसी चट्टान के ऊपर बैठ कर मैं घण्टों सुन्दर प्रकृति के दर्शन किया करता था, जिससे मुझे अनिर्वचनीय सुख मिलता और मैं प्रकृत्ति से एकाकार हो जाता था। इन्हीं दिनों मैंने महात्माओं की शिकायतों के निवारणार्थ स्वर्गाश्रम साधु संघ की स्थापना की और उसे पंजीकृत करा दिया। कुछ दिनों तक मैंने बड़े-बड़े महात्माओं को आमन्त्रित कर साप्ताहिक प्रवचन, दैनिक भजन तथा रामायण-कथा का आयोजन करवाया। कुछ महीनों तक योगवासिष्ठ, तुलसी रामायण तथा उपनिषदों पर भी प्रवचन होते रहे। स्वर्गाश्रम साधु संघ के द्वारा मैंने अपने शिष्यों को संगठन-कार्य का भी प्रशिक्षण दिया।

दिव्य सेवा हेतु प्रवास पर

१९२५ में मैंने शेरकोट राज्य के धामपुर नगर की यात्रा की, जो बिजनौर जिले में है। शेरकोट की रानी श्रीमती फूलकुमारी देवी ने मेरा स्वागत किया। मैंने कई दिनों तक वहाँ भजन किया तथा ग्रामीणों को औषधियाँ बाँटीं। मण्डी की महारानी श्री ललिता कुमारी देवी भी भजन में सम्मिलित थीं। कई वर्षों के पश्चात् जब-कभी महारानी मुझसे मिलतीं, तो वे कहती थीं- "मैं आपका मधुर सुरीला संगीत कभी भूल नहीं सकती। आज भी उसकी स्मृति बनी हुई है। मैं उसके प्रभाव को अब भी अनुभव करती हूँ। उससे मुझे बहुत प्रेरणा एवं आत्मिक विकास मिला है।"

मैं शेरकोट से पैदल चल कर, रास्ते में ग्रामों को देखता हुआ ऋषिकेश लौटा। मैंने योग पर प्रवचन दिये तथा भक्तों के समूह में कीर्तन-भजन किये। सामयिक यात्रा से दिव्य सद्गुणों के अर्जन में सहायता मिली और मैं व्यापक रूप में मानव जाति की सेवा करने में समर्थ बन सका। एक बार परिव्राजक-जीवन में मैंने रामेश्वरम् की यात्रा की। साथ-ही-साथ दक्षिण भारत के तीर्थ-स्थानों के भी दर्शन किये। इस काल में मैं कुछ समय के लिए रमण आश्रम में भी ठहरा; मेरे साथ श्री चन्द्रनारायण हरकूली, सीतापुर के एकवोकेट थे। रास्ते में मैं पुरी गया तथा भगवान् जगन्नाथ की पूजा की। वाल्टेयर में मैंने समुद्र में स्नान किया। रामेश्वरम् में मैंने भगवान् राम-लिंग की पूजा

की। श्री रमण महर्षि के जन्मोत्सव के दिन मैं रमणाश्रम पहुँचा। श्री भगवान् रमण तथा उनके भक्तों के सम्मुख बड़े हाल में मैंने भजन-कीर्तन किये तथा अरुणाचल पर्वत की परिक्रमा कर तैजस् लिंग की पूजा की।

जब-कभी अधिकाधिक जनता की सेवा का मुझे अवसर मिलता अथवा लोग मुझे आध्यात्मिक सम्मेलनों की अध्यक्षता हेतु बाध्य करते, तन्निमित्त मैंने बिहार, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न केन्द्रों का भ्रमण किया। साधना के लिए मैंने कई ज्योतिर्मय केन्द्र स्थापित किये, आध्यात्मिक अधिवेशन तथा कीर्तन-सम्मेलनों के भी आयोजन किये और शिक्षा, धर्म एवं अध्यात्म-सम्बन्धी संस्थाओं की प्रवृत्तियों में भाग लिया। ट्रेन में चलते हुए भी मैं यात्रियों को योगासन सिखाता और उन्हें जप तथा ध्यान-सम्बन्धी सरल साधना बतलाता था। मैं सदा अपने साथ दवा की एक थैली रखता और रोगियों को औषधि बाँटता था।

मेरी यात्रा के महत्त्वपूर्ण स्थल थे-लाहौर, मेरठ, श्रीनगर, पटना, मुंगेर, लखनऊ, गया, कलकत्ता, अयोध्या, लखीमपुरखीरी, भागलपुर, अम्बाला, अलीगढ़, सीतापुर, बुलन्दशहर, दिल्ली, शिकोहाबाद, नैमिषारण्य, मथुरा, इटावा, वृन्दावन, मैनपुरी तथा उत्तर भारत के अन्य बहुत से स्थान। आन्ध्रा में तोटपल्ली पहाड़ी पर शान्ति-आश्रम तथा वाल्टेयर में 'शान्ति मिशन' गया। राजमन्द्री, काकिनाडा, पीतापुरम् तथा लक्ष्मीनरसापुरम् भी गया।

यात्रा के समय मैं अपने साथ एक गठरी रखता था जिसमें दवात, कलम, पेन्सिल, पिन, स्वाध्याय-ग्रन्थ-विवेक-चूड़ामणि, उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र होते थे। मैं कुछ डाक टिकट भी रखता था, जिससे आवश्यक पत्र-व्यवहार में सुविधा मिले। गाड़ी आने से दो घण्टे पहले ही मैं स्टेशन पर चला जाता था। यत्र-तत्र देखने के बदले मैं एक वृक्ष के नीचे बैठ कर लेखन-कार्य करता था। अपनी यात्रा के मुख्य स्थानों में अपने भक्तों से मिलने तथा उनके आर्थिक सहायता प्राप्ति के विचार से मैं कभी भी पते की कापी अपने साथ नहीं रखता था। अपनी यात्रा के उद्देश्य की पूर्ति होते ही मैं शीघ्र लौट आता था।

मैंने केदारनाथ, बदरीनाथ, तुगनाथ तथा त्रिगुणीनारायण की यात्राएँ कीं। मेरे साथ स्वामी बालानन्द तथा स्वामी विद्यासागर भी थे। मैंने बदरीनारायण के गरम सोते में स्नान किया। सारी यात्रा-भर मैंने कीर्तन गाये तथा मानसिक जप किया।

कलकत्ता में स्टीम बोट के सहारे गंगासागर बंगसागर के संगम पर पहुँचा। मेरे साथ श्रीमती महारानी सुरतकुमारी देवी भी थीं। पवित्र गंगासागर में कपिल मुनि का एक छोटा-सा मन्दिर भी है। मैंने समुद्र में स्नान किया। वहाँ एक मेला लगता था। मैंने सीढ़ी पर चढ़ने में यात्रियों की सहायता की।

कैलास-पर्वत के आह्वान पर

ऋषिकेश में साधना के प्रारम्भिक काल में मैंने कैलास-दर्शन का निश्चय किया था। कैलास-शिखर पश्चिमी तिब्बत में है। १२ जून १९३१ को मैंने, परम पूज्य श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी, स्वामी स्वयज्योति महाराज, श्री ब्रह्मचारी योगानन्द जी, श्री महारानी साहिबा सुरत कुमारी देवी, सिंघाई राज्य तथा उनके सेक्रेटरी श्री केदारनाथ के साथ कैलास-यात्रा के लिए प्रस्थान किया। हम सभी ने मानसरोवर झील में स्नान किया तथा कैलास-पर्वत की परिक्रमा की। मैंने सारी दूरी पैदल ही तय की। इस पृथ्वी पर कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसकी तुलना कैलास के हिम-स्थलों के चिरन्तन सौन्दर्य से की जा सके। सारी यात्रा में कैलास-यात्रा ही सबसे अधिक कठोर थी। इसे मेरु भी कहते हैं। मेरु का अर्थ है- 'सभी पर्वतों की धुरी।' जिस समय मैं वहाँ गया था, मैसूर के महाराजा साहब भी कैलास पहुँचे हुए थे। भारत में एक वे ही महाराजा हैं, जिन्होंने कैलास की यात्रा की। अल्मोड़ा से कैलास की दूरी लगभग २३० मील है। मनुष्य उस स्थान का दर्शन कर दो महीने में सरलतापूर्वक लौट सकता है। २२ अगस्त को हमारी यात्रा-मण्डली अल्मोड़ा लौट आयी।

आध्यात्मिक ज्ञान का सामूहिक प्रसार

९ सितम्बर १९५० को मैंने ज्ञान-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। मैंने दो महीनों तक भारत तथा लंका की यात्रा की। ७ नवम्बर १९५० को मैं ऋषिकेश लौट आया। इस प्रकार मैं सारे देश के सहस्रों सच्चे आध्यात्मिक साधकों के निकट सम्पर्क में आया। मुझे बड़ा हार्दिक आनन्द है कि अखिल भारत एवं लंका की यात्रा द्वारा ईश्वर ने मुझे अपनी तथा अपने बच्चों की सेवा का अवसर प्रदान किया। भारत तथा लंका की जनता की भक्ति, संन्यास के प्रति उनका सम्मान तथा उनकी योग-वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा को मैं अत्यन्त आनन्दपूर्वक स्मरण किया करता हूँ।

मैंने समस्त भारत के सभी प्रमुख नगरों, कसबों तथा ग्रामों की यात्राएँ कीं, अनेक सार्वजनिक सभाएँ बुलायीं तथा कीर्तन किये। मैं बहुत से स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में सदाचार तथा यथार्थ शिक्षा पर प्रवचन देता था। साधारण आध्यात्मिक विषयों पर मैंने अनेक सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये। ऐतिहासिक घटना अखिल भारत लंका-यात्रा में कई सहस्र रुपयों की पुस्तकें जनता में निर्मूल्य वितरित की गयीं। जीवन के सामान्य अभ्यास के अनुसार मैंने योग, भक्ति तथा वेदान्त पर लम्बे भाषण तैयार करने में समय नहीं गँवाया। कीर्तन तथा संगीत के साथ मैं साधना के सम्बन्ध में व्यावहारिक शिक्षण भी दिया करता था। इसका श्रोताओं पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। कभी-कभी मैं भक्तों के साथ आनन्द-विभोर हो कर भगवान् शिव तथा भगवान् कृष्ण का नृत्य भी करता था, जिससे सभी लोग आह्लादित हो उठते थे। आज भी सैकड़ों व्यक्ति मेरे कीर्तन 'अगड़ बम', 'सच्चिदानन्द हुँ', 'पिला दे' इत्यादि को गाया करते हैं। कई स्थानों में भक्त जन भी खड़े हो कर घण्टों तक ईश्वरीय भाव में नृत्य किया करते थे। जहाँ भी मैं जाता, जनता के प्रेम से विभोर हो उठता था। मैंने लोगों की भक्ति तथा श्रद्धा का सर्वत्र आनन्द उठाया। मैंने बारम्बार भक्त-समूह की ईश्वर-भक्ति के सागर में स्नान किया। मैंने बारम्बार भगवन्नाम के अमृत का पान किया, जो लोग भावातिरेक में गाते थे।

सेवा से मुझे आनन्द मिलता है। एक क्षण के लिए भी मैं सेवा के बिना नहीं रह सकता। अखिल भारत यात्रा तक में मुझे सेवा का जाज्वल्यमान क्षेत्र प्राप्त हुआ। दो महीनों तक मैं अथक सेवा-कार्य करता रहा। मुझे ऐसा लगा कि यात्रा-कार, वायुयान, ट्रेन, मोटर एवं स्टीमर-ये निश्चित समय पर पहुँचने के लिए मेरे अत्यधिक कार्य में व्यवधान हैं। मुझे विभिन्न उत्सवों में निर्धारित समय के अन्दर पहुँचना पड़ता था, जिससे भक्तों की माँगों को सुनने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था।

यात्रा से वापस आते समय जब मैं बम्बई पहुँचा, तब मेरी इच्छा थी कि दिल्ली में यात्रा-कार से विदा ले कर प्रान्त-प्रान्त, घर-घर में कीर्तन, भजन तथा भक्तों के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए मृत्युंजय जप का प्रचार करूँ। मैं दिव्य जीवन के सन्देश को हर व्यक्ति के घर पहुँचाना चाहता था।

आध्यात्मिक अधिवेशन

यद्यपि मुझे एकान्त में गम्भीर ध्यान करने की विशेष अभिरुचि थी, फिर भी स्वर्गाश्रम में रहते हुए मैं समय-समय पर शाम को सत्सग आयोजित करके महात्माओं तथा ब्रह्मचारियों को आमन्त्रित करता था। एक पंजाबी महात्मा योगवासिष्ठ तथा तुलसी-रामायण पर प्रवचन करते थे तथा मैं भजन और कीर्तन से सत्संग का उपसंहार करता था। समय-समय पर मैं पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में सीतापुर, मेरठ आदि स्थानों की यात्राएँ किया करता था। रात्रि में कीर्तन करता, सभी उच्च विद्यालयों तथा कालेजों में भाषण देता, साथ ही योगासनों का प्रदर्शन भी करता था। विद्यार्थियों में 'बीस आध्यात्मिक नियम' तथा 'ब्रह्मचर्य का महत्त्व' के परिपत्र बाँटा करता था। मैंने

प्रातः चार बजे सार्वजनिक प्रार्थना तथा मौन ध्यान आरम्भ कराये एवं सामूहिक साधना के लिए मैं सभी भक्तों को बाध्य करता था।

मैंने लोगों को लिखित जप का आदेश दिया। बहुत से भक्तों को सभाओं में स्थिर मौन बैठ कर मन्त्र लिखते देखा, जो स्पष्टतः सबसे अधिक संख्या में मन्त्र लिखते थे, उन्हें मैं प्रोत्साहन के लिए पुरस्कार देता था। जनता में उत्साह लाने के लिए केवल विजेताओं को ही नहीं, अपितु हाल में बैठे सारे लोगों को आध्यात्मिक पुस्तकें देता था। भक्त जन प्रचुर मात्रा में फल लाते, जो सब-के-सब वहीं पर श्रोताओं में बाँट दिये जाते थे। अन्त में प्रसाद के रूप में थोड़े से मैं स्वयं ग्रहण करता था।

प्रवचन-यात्रा

यात्रा के संघटनकर्ता जन एक या दो सप्ताह के लिए द्रुत कार्यक्रम बना लिया करते थे। दो या तीन दिनों के लिए अखण्ड कीर्तन भी चलता था। बाहर सहायता के लिए मैं अपने शिष्यों श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द तथा श्री स्वामी आत्मानन्द को साथ ले लिया करता था। श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द मेरे अँगरेजी प्रवचनों को तुरन्त सुन्दर हिन्दी में भाषान्तरित कर देते थे तथा स्वामी आत्मानन्द मधुर स्वर से भजन एवं कीर्तन करते थे। निःशुल्क वितरण के लिए बहुत से परिपत्रक छापे गये थे।

१९३३ में मैंने खीरी-लखीमपुर, मेरठ तथा हरदोई में प्रचार-यात्राएँ कीं। हर साल एक या दो सप्ताह के लिए मैं पंजाब अथवा बिहार की यात्रा किया करता था। इन यात्राओं के समय मैं स्वर्गाश्रम के अपने साधकों तथा ऋषिकेश के पोस्टमास्टर को कह जाता था कि मेरे पत्र मेरे पास न भेजे जायें। मैं यात्रा के समय पत्र-व्यवहार नहीं करता था तथा ज्ञान के प्रसार के लिए ही एक चित्त से कार्य किया करता था।

यद्यपि मैं ऋषिकेश में सूखी रोटी पर ही निर्वाह करता था, फिर भी रात्रि-दिवस इस उग्र कार्य के कारण मुझे पौष्टिक अन्न की आवश्यकता हुई। मैं अपनी जेब में कुछ पाव रोटी तथा बिस्कुट रख लिया करता था; क्योंकि कई स्थानों पर मुझको खाने तथा आराम करने का भी समय नहीं मिल पाता था। ऐसे अधिवेशनों के लिए निकलने से पहले मैं अपने लौटने के लिए पर्याप्त रेलभाड़ा रख लिया करता था। अपने व्यय के लिए मैंने कभी भी अधिवेशन के कार्यकर्ताओं से पैसे नहीं माँगे; परन्तु अधिवेशन के समय लोगों में निःशुल्क वितरित किये जाने वाले विभिन्न भाषाओं में परिपत्र प्रचुर सख्या में छपवाने को उनसे कहता था।

यात्रा में साथ चलने वाले शिष्य गण बारम्बार कहते, 'गुरुदेव के साथ यात्रा करना तो बहुत आनन्दकर है; क्योंकि वे हमारे साथ अति-सुन्दर व्यवहार करते हैं।' मेरे पास जितनी भी सुन्दर वस्तुएँ होतीं, उनमें मैं उनको बाँटता और उनके स्वास्थ्य की भी देख-रेख करता तथा उनको प्रख्यात और सुपरिचित बना देता था। कभी-कभी मैं आयोजकों को लिख देता, 'मेरे कमरे में पर्याप्त फल तथा बिस्कुट रखवा दीजिए। यही मेरा सगुण ब्रह्म है। ठोस कार्य करने के लिए साधकों को पौष्टिक आहार, दूध एवं फल की आवश्यकता होती है।' १९३४ ई. में सीतापुर में मैंने रोग निवारण-यज्ञ का आयोजन किया, बहुत से ग्रामों की यात्रा की तथा निर्धन जनता में औषधियाँ बाँटीं। श्री स्वामी ओंकार तथा बहन सुशीला (श्री एलेन सेन्ट क्लेयर नोवाल्ड) मेरे साथ थे।

अमोघ प्रेरणा

अत्यधिक कार्यों में व्यस्त रहने पर भी मैं जप, ध्यान, गहरी श्वास का अभ्यास, भस्त्रिका प्राणायाम तथा कीर्तन से विश्राम प्राप्त किया करता था। बहुत से नगरों में मैंने नगर-कीर्तन तथा प्रभातफेरी का भी आयोजन करवाया। जहाँ भी मैं जाता, सारा नगर आध्यात्मिक स्पन्दनों से ओत-प्रोत हो जाता है। लोग कई दिनों तक अनुपम शान्ति तथा शक्ति का अनुभव करते। कई वर्षों के बाद भी भक्त जन मुझे लिखते, 'प्रिय स्वामी जी, हम आज भी आपके महामन्त्र-कीर्तन की ध्वनि तथा ॐ ध्वनि को सुना करते हैं।' खेतों में काम करने वाले कृषक मेरी 'ॐ नमः शिवाय', 'चिदानन्द हूँ', 'सीता सीता राम' आदि ध्वनियों को आज भी गाया करते हैं। सभी कालेजों तथा स्कूलों के विद्यार्थी आज भी मेरे कीर्तन 'धूमपान त्याग कर गोविन्दा; गोविन्दा; गोविन्दा' को गाया करते हैं। मेरी यात्रा के परिणाम आश्चर्यजनक तथा स्थायी सिद्ध हुए।

आश्रम का कार्य-भार बढ़ चला। मैंने १९३८ में यात्रा जीवन का परित्याग किया। बाहर विभिन्न केन्द्रों पर होने वाले आध्यात्मिक अधिवेशनों में सम्मिलित होने के लिए मैं अपने शिष्यों को भेज दिया करता था। कई बार पंजाब के भक्तों ने मुझे बाध्य किया, यहाँ तक कि उन लोगों ने मेरे कुटीर के आगे सत्याग्रह करना आरम्भ कर दिया। मुझे दिसम्बर में उनके वार्षिक कीर्तन-सम्मेलन के लिए जाना पड़ा।

जनता के जीवन में गतिशील रूपान्तर

१९३३-३६ के दिनों में लिखे गये मेरे कुछ पत्रों के उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिनसे मेरी यात्रा के समय के कार्यों का कुछ अनुमान लग सके :

(१) जब मैं यात्रा करता हूँ, तो अपनी सारी शक्ति एक सप्ताह में ही लगा देता हूँ। अब मैं थक गया हूँ। फिर भी लोग मुझको मेरठ जाने के लिए बाध्य कर रहे हैं। यह सब 'उसकी' ही कृपा है। 'उसी' की इच्छा पूर्ण हो । मेरे पत्रों को मेरे पास न भेजिए। इससे मेरे यहाँ के कार्य में हस्तक्षेप होगा। सभी स्थानों के लोग मेरी माँग कर रहे हैं। कुछ भी निश्चित नहीं है। मैं एक या दो सप्ताह में ऋषिकेश लौट सकता हूँ।

(२) दिन में प्रेरणात्मक भाषण तथा रात्रि को कीर्तन करने में मेरा समय व्यतीत होता है। मैं भक्तों में सुख तथा शान्ति का संचार करता हूँ। लोग मुझे क्षण भर को भी नहीं छोड़ते । सीतापुर तथा लखीमपुर आज इस जगत् में वैकुण्ठ बने हुए हैं। मैंने तीन सहस्र लोगों के साथ विराट् कीर्तन किया है। ऐसा दृश्य लखीमपुर के इतिहास में कभी नहीं देखा गया था। मैं आज हरिजनों के साथ कीर्तन करूँगा। कीर्तन-अभियान के द्वारा हम भारत में क्रान्ति ला सकते हैं। भारत को इसकी आवश्यकता है। आज बहुत जागरण हो चुका है।

(३) व्यवस्थापकों से कह दीजिए कि उनसे अब मैं थोड़ा-सा प्रसन्न हूँ। एक पृथक् मंच पर तीन दिनों के लिए एक अखण्ड-कीर्तन अति-अनिवार्य है। यही एकमेव प्रभावशाली तथा ठोस कार्य है। दूसरा कार्य है विभिन्न केन्द्रों में संकीर्तन के द्वारा सारे वातावरण को बदल देना। विश्व शान्ति के लिए ये दो बातें अति-महत्त्वपूर्ण हैं। राम-नाम के सामने स्थानीय दंगा तथा धारा १४४ कुछ भी नहीं हैं। इसके लिए आपको कर्फ्यू आर्डर से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

कीर्तन के विभिन्न प्रकार

आज भी हमको स्पष्ट स्मरण है कि जब मैं 'अगड़ बम' कीर्तन करता, तो सैकड़ों लोग खड़े हो कर नाचते-गाने लगते थे। हर कीर्तन के अन्त में मैं साधना के सम्बन्ध में प्रभावशाली भाषण दिया करता था। मैंने बिहार में लारी-कीर्तन करवाये। एक लारी में मैं भक्तों के साथ विभिन्न स्थानों में गया। ऋषिकेश में भी मैंने कई बार नौका-कीर्तन का आयोजन किया।

कीर्तन का दूसरा आकर्षक ढंग था वर्ग-कीर्तन। मैंने सरकारी अफसरों को मंच पर बुला कर कीर्तन करवाये। फिर सभी कालेज प्रोफेसर, डाक्टर, विद्यार्थी, महिलाओं तथा लड़कियों को भी अवसर दिया गया। पहले तो सब हिचकते तथा संकोच का अनुभव करते; परन्तु कालान्तर में उन्हें कीर्तन के लाभ अनुभव होने लगे। कुछ महीनों के बाद वे सभी कीर्तन के कट्टर समर्थक बन गये। उन लोगों ने विभिन्न नगरों में कई कीर्तन-मण्डलियाँ भी स्थापित कीं।

चतुर्थ अध्याय

दिव्य सेवा-कार्य

प्रथम अवस्थान

साधकों की प्रशिक्षण-विधि

मुझे सदैव एकान्त में मौन-साधना प्रिय थी। दिन में मैं जिज्ञासु साधकों के लिए थोड़े समय में कुछ लेख एवं पत्र लिख दिया करता था। मैं मिट्टी के तेल का प्रयोग प्रकाश के लिए नहीं करता था, क्योंकि मैं रात्रि में कभी कोई काम नहीं करता था। मैं प्रातः केवल एक घण्टे के लिए कुटीर से बाहर आता था, जिसके अन्दर मैं रोगियों में औषधियों का वितरण करता, कुटीर के सामने आहाते में तेजी के साथ टहलता, गंगा में स्नान कर क्षेत्र से भिक्षा लेने के लिए जाता था। ऋषिकेश में पैंतीस वर्षों के जीवन में यह कार्यक्रम मेरे लिए एक स्वभाव जैसा बन गया है। मैं मित्रों के साथ कभी भी व्यर्थ गपशप नहीं करता था। क्षेत्र जाने पर मैं मौन रहता था। लोगों से बचने के लिए मैं जंगल में एक छोटी पगडण्डी से हो कर ही टहलने के लिए जाता। क्षेत्र जाने के समय मैं गम्भीर श्वास लेता था और मानसिक जप किया करता था।

मुझे ऐसी महत्त्वाकांक्षा नहीं थी कि मैं विस्तृत यात्रा अथवा मंच पर से प्रेरणात्मक भाषण दे कर विश्व-ख्याति प्राप्त मनुष्य बन जाऊँ। मैंने कभी भी किसी का गुरु बनने की चेष्टा नहीं की। जब लोग मुझे 'सद्गुरु' या 'अवतार' कहते हैं, तो मुझको प्रसन्नता नहीं होती। मैं तो 'गुरुपन' का कट्टर विरोधी हूँ। यह एक बड़ी बाधा है, जिसके फल-स्वरूप बड़े-बड़े साधक तथा महात्मा भी पतन को प्राप्त हुए हैं। 'गुरुपन' समाज के लिए अभिशाप है। अब भी मैं लोगों को मानसिक नमस्कार करने के लिए ही कहता हूँ। १९३१ में मैंने एक शिष्य को एक पत्र लिखा, जिसके द्वारा मेरा भाव स्पष्ट हो जायेगा :

“मैं तो एक सामान्य साधु हूँ। सम्भवतः मैं आपको अधिक सहायता करने में समर्थ न हो सकूँ। इसके अतिरिक्त मैं शिष्य नहीं बनाता । मैं आजीवन आपका सच्चा मित्र बना रह सकता हूँ। मैं अपने निकट दीर्घ काल तक व्यक्तियों को रखना पसन्द नहीं करता। मैं कुछ महीने तक साधना-सम्बन्धी उपदेश दे कर अपने शिष्यों को कश्मीर अथवा उत्तरकाशी में जा कर गम्भीर ध्यान करने का आदेश देता हूँ।"

विनय तथा नम्रता

मैंने न तो कभी ऐसा कहा और न किया, जिससे जनता मेरे कमण्डलु के एक बूँद जल से मुक्ति पाने अथवा स्पर्श मात्र से समाधि पाने जैसे महान् आश्वासनों से मेरी ओर आकृष्ट हो । आध्यात्मिक मार्ग में क्रमिक उन्नति के लिए मैंने मौन-साधना, जप तथा ध्यान पर ही विशेष बल दिया। मैं बारम्बार साधकों को मानव जाति की निष्काम सेवा द्वारा हृदय को शुद्ध बनाने का परामर्श देता था।

सन् १९३३ में मद्रास के प्रकाशकों ने मेरे जीवन के सम्बन्ध में लेख लिखे तथा मुझे 'अवतार' बतलाया। शीघ्र ही मैंने उनको जो उत्तर दिया, उससे आपको मेरे भाव का स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा :

"कृपया सारे 'कृष्ण-अवतार' तथा 'भगवान्' की बातें हटा दीजिए। प्रकाशन को सरल तथा स्वाभाविक रखिए। तभी यह आकर्षक बनेगा। मेरे विषय में बहुधा अत्युक्ति न छापिए । रस भाप बन कर उड़ जायेगा। मुझे 'जगद्गुरु', 'महामण्डलेश्वर' तथा 'भगवान्' की उपाधियाँ न दीजिए। सत्य को स्पष्ट रखिए, तब वह स्वयं ही चमकेगा। मैं सरल तथा स्वाभाविक जीवन व्यतीत करता हूँ। मैं सेवा में अत्यन्त आनन्द उठाता हूँ। सेवा ने ही मुझको उन्नत बनाया है। सेवा ने ही मुझको शुद्ध बनाया है। यह शरीर सेवा के लिए ही है। मैं प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करने तथा जगत् को सुखी बनाने के लिए ही जीवन-यापन करता हूँ।"

गधे तथा अन्य जानवरों के सामने भी मैं मानसिक नमस्कार करता हूँ। अपने भक्तों तथा शिष्यों को पहले मैं स्वयं नमस्कार कर लेता हूँ। मैं सारे नाम-रूपों से परे सार-तत्त्व को देखता हूँ। यही दैनिक जीवन में वास्तविक वेदान्त है। मैं साधकों से प्रेम करता हूँ। बिना उनके कहे ही मैं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता हूँ।

नये साधकों का पथ-प्रदर्शन

१९३० ई. से मेरे पास पथ-प्रदर्शन के लिए बहुत से साधक आजीवन आध्यात्मिक साधना की ज्वलन्त कामना ले कर आने लगे। मुझे भी जगत् की सेवा करने की प्रबल आंकांक्षा थी। उन दिनों मैं साधु-महात्मा बहुत ही दयनीय अवस्था में थे। उन्हें आवश्यक सुख-सुविधाएँ तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए उचित पथ-प्रदर्शन प्राप्त न था। बहुत से तो चिलचिलाती धूप में तथा हिमालय के कठोर शीत में अपने शरीर को पीड़ित करते थे। कुछ मादक द्रव्यों का पान कर तथाकथित समाधि का अभ्यास किया करते थे।

संन्यासियों तथा योगियों के एक दल को सही दिशा में प्रशिक्षित करने के लिए मैंने कुछ साधकों को पास वाले एक कुटीर में रहने की अनुमति दे दी। मैंने क्षेत्र से उनकी भिक्षा के लिए प्रबन्ध करा दिया तथा उनको दीक्षा दी। मैंने उनके आराम तथा सुविधा के लिए सारे प्रबन्ध कर दिये। उन्हें प्रोत्साहित किया तथा उनके अन्दर वैराग्य भर दिया। मैंने उनके स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया। मैं उनसे साधना के विषय में पूछा करता तथा उनके ध्यान की कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयोगी संकेत दिया करता था। जब वे सेवा करने को प्रस्तुत होते तो मैं उनसे कहता कि कुटिया-कुटिया में जा कर वृद्ध एवं रोगी महात्माओं की भक्ति एवं श्रद्धा-भाव से सेवा करो, उनके लिए क्षेत्र से भोजन लाओ, उनकी टाँगों की मालिश करो और उनके वस्त्र धोओ।

कुछ शिक्षित विद्यार्थियों को मैंने अपने छोटे लेखों की प्रतिलिपि तैयार करके पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने और अपना शेष समय स्वाध्याय, जप तथा ध्यान में व्यतीत करने को कह दिया। उन्हें मेरे लेखों की प्रतिलिपि करने में अति आनन्द आता था; क्योंकि उनमें सारे सन्त-महात्माओं के उपदेशों का सार और उपनिषदों एवं गीता के कठिन अंशों की स्पष्ट व्याख्या भी सन्निहित रहती थी। चंचल इन्द्रियों एवं मन के विक्षेपों पर नियन्त्रण हेतु मेरे लेखों में अभ्यासगत पाठ होते थे।

दीर्घ काल तक प्राचीन धर्मग्रन्थों का अध्ययन करते रहने के स्थान में साधक गण मेरे लेखों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने में अपना कुछ समय लगाते, जिससे वे कुछ ही समय में सरलतापूर्वक योग तथा दर्शन सीख लेते थे। मैं उनके चेहरों का सूक्ष्म अध्ययन करके उनकी रुचि एवं प्रकृति के अनुरूप ही उन्हें काम देता था । कभी-कभी मुझे स्वयं पूरा कार्य करना पड़ता था।

बूढ़े व्यक्तियों को, जिनके लिए संसार में कोई बन्धन नहीं था, मैंने साधना के लिए प्रोत्साहित किया तथा उन्हें नित्य गंगा में स्नान, अधिकाधिक जप तथा श्रवण करने की राय दी। जब मैं उनके चेहरे पर शान्ति तथा सुख देखता, तो प्रसन्नता से थिरक उठता था । इस प्रकार अधिकाधिक साधक मेरे पास आने लगे। स्वर्गाश्रम उन साधकों की व्यवस्था में समर्थ न हो सका। मैं उस स्थान को पसन्द करता था और वहाँ की शान्ति का आनन्द लूटता था; परन्तु बहुसंख्यक शिक्षित साधकों के हितार्थ मैंने स्वार्गाश्रम छोड़ने का निश्चय किया।

द्वितीय अवस्थान

दिव्य जीवन संघ का बीजारोपण

मैं स्वभावतः कभी भी योजनाओं को बनाने में अपना समय नहीं खोता था, ईश्वर-कृपा पर ही आश्रित था। मैं जाता कहाँ? यह एक बड़ी समस्या थी। कुछ दिनों तक मैंने रामाश्रम लाइब्रेरी की एक छोटी-सी कोठरी में निवास किया। मेरे शिष्य निकटवर्ती एक छोटी-सी धर्मशाला में रहने लगे और क्षेत्र से ही अपना भोजन पाते थे। मैं भी कुछ दिनों तक भिक्षार्थ क्षेत्र में गया। समय की बचत के लिए मैं एक साधु द्वारा अपना भोजन क्षेत्र से मँगा लिया करता था। इस प्रकार कई महीने व्यतीत हो गये।

कई महीनों के बाद मुझे निकट ही एक कुटीर मिल गया जो ध्वंसावस्था में था । दरवाजे तथा खिड़कियाँ लगा कर उसमें कुछ सुधार लाया गया। उस स्थान में मैंने आठ वर्षों से अधिक निवास किया। मैं ने सुगमतापूर्वक जंगल में कुछ झोपड़ियाँ बना सकता था; परन्तु वैसा मेरे प्रबल कार्य के लिए ठीक नहीं रहता। पुस्तकें तथा प्रतिलिपियाँ दीमक से सुरक्षित न रह पातीं। मैंने एक धर्मशाला में कई कमरे बने देखे, जिन्हें एक दुकानदार गोशाला के रूप में प्रयोग करता था। इन कमरों में दरवाजे नहीं थे। शनैः शनैः सब कमरे साधकों के निवास स्थान के रूप में परिवर्तित कर दिये गये।

जब भक्त जन मुझे मेरे व्यक्तिगत कार्यों के लिए रुपये देते थे, तो मैं उन्हें 'बीस आध्यात्मिक नियम', 'शान्ति एवं आनन्द का मार्ग', 'चालीस उपदेश' तथा अन्य परिपत्रों को छपवाने में व्यय करके दर्शनार्थियों में उनका वितरण कर देता था। मैं रोगी महात्माओं के लिए औषधि तथा लेखों को समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने और साधकों से पत्र-व्यवहार करने के लिए डाक टिकट खरीदता । शनैः-शनैः कार्य बढ़ चला। मैं साधकों की खोज में बाहर नहीं निकलता था।

सच्चे साधक बड़ी संख्या में मेरे पास सहायता तथा पथ-प्रदर्शन के लिए आने लगे। उन सभी ने मुझसे दीक्षा ली तथा वे धर्मशाला के सामने वाले कमरों में रह कर अहर्निश कार्य करने लगे। कार्य-भार सँभालने के लिए मैंने एक टाइप राइटर तथा डुप्लिकेटर मँगवाये। जगत् के आध्यात्मिक उत्थान के लिए इस ईश्वरीय कार्य में लोगों ने बड़ी दिलचस्पी दिखायी। मेरे प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। अपने अतीत को भूल कर सेवा तथा साधना के द्वारा उन्नति प्राप्त करने के लिए वे कार्य में निमग्न हो गये। भक्तों ने इस कार्य के लिए धर्म-दान दिये। पाँच साधकों के लिए मैं ऋषिकेश के काली कमली वाले क्षेत्र से सूखा अन्न प्राप्त कर लेता था, अन्य साधकों तथा अतिथियों के लिए मैं अपने कुछ भक्तों से प्राप्त धर्म-दान से किसी तरह प्रबन्ध करता था। मैंने कुछ पुस्तकें भी बिक्री के लिए छपवार्थी ।

साधकों की योग्यता तथा क्षमता का उपयोग

बहुत से नये योग्य साधकों के आने पर मैंने उनकी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार विभिन्न कार्य-क्षेत्र प्रारम्भ किये। मैंने उनकी योग्यताओं तथा गुप्त क्षमता का ज्ञान करके उन्हें अपने-अपने मार्ग में प्रोत्साहन दिया। तब कठिन श्रम करने वाले साधक गण, दर्शनार्थी तथा असमर्थ साधकों के भोजन के प्रबन्ध हेतु एक छोटा-सा रसोईघर भी आरम्भ हो गया। मैं भक्तों, उच्च विद्यालयों, पुस्तकालयों तथा धर्मदाताओं और संन्यास-मार्ग के विभिन्न प्रकार के भक्तों के नाम तथा पते कापियों में रखता था तथा पुस्तक छपने पर प्रचारार्थ उनके पास भेजता था। उनके पते विभिन्न शीर्षकों के नीचे सुव्यवस्थित रूप से लिखे गये थे। मैं अपने पता-रजिस्टर के कुछ शीर्षकों के नाम नीचे दे रहा हूँ :

आश्रम, संस्था, न्यायाधीश, वकील, स्नातक, पुस्तक-विक्रेता, प्रकाशक, फर्म्स, डाक्टर, पत्र-व्यवहार वाले साधक, दिव्य जीवन संघ की शाखाएँ, पुस्तकालय, महिला-विभाग, ब्रह्मचारी तथा संन्यासी साधक, मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ, महाराजा तथा जमींदार, दीक्षा-प्राप्त साधक, मासिक दानदाता, गृहस्थ शिष्य, आफिसर, संरक्षक, प्रोफेसर, कुछ आश्चर्यजनक कृपण जन। अब पते की बहुत-सी पुस्तकें हैं। प्रत्येक लेख के लिए एक बड़ा-सा रजिस्टर है। मैं स्वयं लिखता था तथा उनके परिवर्तनों को भी स्वयं ही ठीक कर दिया करता था। आज भी मैं स्वयं मुख्य पतों को लिखता हूँ तथा साधकों को उन रजिस्टरों को भली प्रकार सँभालने की अनुमति देता हूँ।

तृतीय अवस्थान

महान् संस्था का जन्म

ईश्वरीय कार्य को विस्तृत रूप देने के लिए मैंने १९३६ ई. में द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी (दिव्य जीवन संघ ट्रस्ट) की स्थापना की तथा ट्रस्ट डीड को अम्बाला में पंजीकृत करवा दिया । १९३६ में एक कीर्तन-सम्मेलन के सभापतित्व के लिए मैं लाहौर गया था, वहाँ से लौटते समय मेरे मन में ट्रस्ट सोसायटी के विषय में विचार आया। अम्बाला में उतर कर मैंने एक वकील से राय ले कर ट्रस्ट डीड तैयार कर ली। तदुपरान्त विश्व-भर में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार के लिए द डिवाइन लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) की स्थापना की गयी। शीघ्र ही सारे प्रमुख नगरों में ३०० शाखाएँ खुल गयीं। हजारों साधकों ने मुझसे संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। जब तक वे अनुशासित होना चाहते हैं, तब तक मेरे साथ ही रह कर कार्य करते हैं। उन्नत साधक बड़े नगरों में जा कर अपना प्रचार-कार्य आरम्भ कर देते हैं अथवा वे हिमालय की गुफाओं में व्यक्तिगत साधना करने लगते हैं।

संसार के सभी भागों से जिज्ञासु साधक पत्र-व्यवहार के द्वारा पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते हैं। योग, भक्ति, वेदान्त तथा स्वास्थ्य के व्यावहारिक पक्ष पर बहुत से लेख परिपत्र, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के रूप में विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। सभी देशों के प्रमुख समाचार-पत्र योग, स्वास्थ्य तथा सामान्य आध्यात्मिक विषयों पर मेरे लेख छापा करते हैं। आश्रम में आधा दर्जन अँगरेजी तथा हिन्दी पत्रिकाएँ विश्व-भर में भेजने के लिए प्रकाशित होती हैं।

आज आश्रम ४०० व्यक्तियों - विद्वान् तथा सुसंस्कृत जन, महात्मा, योगी, भक्त, निर्धन तथा रोगियों का निर्वाह करने में समर्थ है। पड़ोस के गाँवों के विद्यार्थी भी यहाँ स्कूल में आ कर शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनका तो कहना ही क्या!

गतिशील आध्यात्मिक नव-निर्माण का केन्द्र

बहुत से विदेशी साधक आश्रम में आ कर कुछ सप्ताह अथवा माह ठहर कर आश्रम के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। शिवानन्दनगर के निवासी युवक तथा वृद्ध नर तथा नारी-सभी इस पवित्र केन्द्र के सुख एवं शान्ति का उपभोग करते और यहाँ रह कर समस्त विश्व की सेवा करते हैं। वे सभी मेरी वैयक्तिक देख-रेख में रहते हैं। मैं उन सबको सारे सुख तथा सुविधाएँ प्रदान करता हुआ उनकी आध्यात्मिक प्रगति के विकास हेतु सहायता करता हूँ।

उनके रहने के लिए बहुत-से कमरे, कुटीर तथा मकान हैं। पत्र-व्यवहार तथा पुस्तक-प्रकाशन के लिए तीस से अधिक टाइपराइटर रात-दिन काम करते हैं। योग्य तथा कुशल प्रोफेसरों एवं अध्यापकों द्वारा योग-वेदान्त अरण्य अकादमी बहुत से साधकों को शिक्षा प्रदान करती है। साधक सभी विषयों में विद्वान् बन जाते हैं। अकादमी-मुद्रणालय में अब टाइप बैठाने, छापने, पृष्ठ मोड़ने तथा पुस्तकें बाँधने की कई विद्‌युत् द्वारा स्वतःचालित आधुनिक मशीनें हैं। युवकों में ज्ञान-प्रचार के लिए लेख-प्रतियोगिताएँ होती हैं तथा कालेजों और विश्वविद्यालयों में अपना अध्ययन जारी रखने के लिए उनको छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

शिवानन्द सामान्य चिकित्सालय महात्माओं, यात्रियों तथा पड़ोसी गाँवों की निर्धन जनता के लिए वरदान है। औषधि की विभिन्न पद्धतियों में कुशल एवं अनुभवी डाक्टर चिकित्सालय का कार्य सँभालते हैं। सामान्य चिकित्सालय आधुनिक प्रयोगात्मक साधनों-जैसे एक्सरे, डायथर्मी, ई. एन. टी. तथा नेत्र-रोगों के लिए हाइ फ्रीक्वेंसी यन्त्रों (अपार्ट्स) से सम्पन्न है।

भगवान् विश्वनाथ-मन्दिर में रोगियों के रोग निवारणार्थ पूजा का आयोजन किया जाता है, जिससे विश्व के कई भागों से आ कर अनेकानेक लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया है। ऐसी पूजा से भक्त गण शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करते हैं। मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रह जाता, जब मेरे पास सैकड़ों पत्र उन भक्तों के आते हैं जिन्होंने आश्रम के सर्व-धर्म-मन्दिर में विशेष पूजा द्वारा नवजीवन प्राप्त किया है। वे जीवन में किस प्रकार जीवनान्तक परिस्थितियों से चमत्कारिक रूप से बच गये, इस पर वे पोथे-के-पोथे लिख डालते थे।

अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के नेता लोग तथा अनुयायी जन भी आश्रम में आ कर ठहरते हैं और वे इस आश्रम को एक सार्वजनिक मंच के रूप में विश्व-सेवा का आदर्श केन्द्र मानते हैं। प्रत्येक आश्रमवासी के मुख पर भासमान आनन्द एवं सुख को मैं अपने समक्ष एक विशाल आध्यात्मिक उपनिवेश (बस्ती) के रूप में देखता हूँ। लोग आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति जैसी कई भावनाएँ ले कर यहाँ आते हैं, उनकी अधिकांश कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, जिससे उन्हें अति-आश्चर्य होता है। उस परमात्मा की जय हो, जिसने सभी प्रकार के सत्यान्वेषियों के लिए यह एक आदर्श केन्द्र प्रदान किया है!

आश्रम की सामान्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त समय-समय पर केन्द्र में तथा अन्य स्थानों में नेत्र-दान-यज्ञ भी आयोजित किये जाते हैं। भारत के प्रमुख नगरों में प्रान्तीय दिव्य जीवन सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। छुट्टियों में छात्र गण आश्रम में आ कर अपना समय बिताते और यहाँ के दैनिक कार्यक्रम तथा सत्संग में भाग ले कर अपार आध्यात्मिक लाभ उठाते हैं।

चतुर्थ अवस्थान

सामूहिक साधना

प्राचीन अभ्यास के कारण युवा साधक सर्दी के दिनों में प्रातः छह-सात बजे तक सोया करते थे। उन्हें अपना अमूल्य जीवन ब्राह्ममुहूर्त में चार से छह बजे तक सो कर नहीं गँवाना चाहिए। यह समय गम्भीर ध्यान के लिए उपयुक्त है। सारा वातावरण आध्यात्मिक स्पन्दनों से परिपूर्ण रहता है। इस समय मनुष्य बिना अधिक प्रयास के ही चित्त को एकाग्र कर सकता है।

मैं अपनी कुटीर से 'ॐ ॐ ॐ', 'श्याम, श्याम' अथवा 'राधेश्याम, राधेश्याम' मन्त्र का बारम्बार उच्चारण करके साधकों को प्रातः प्रार्थना तथा ध्यान के लिए जगा देता था। तामसिक वृत्ति वाले साधकों पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मैं सूर्यास्त के पहले ही उनके रात्रि-भोजन का प्रबन्ध करने लगा। इससे कुछ लोग सूर्योदय से पहले उठने में समर्थ हुए। जो लोग रात्रि में अधिक खा लेते हैं, उनके लिए प्रातः जल्दी उठना कठिन होता है।

साधना की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अपने कमरे में ध्यान करते समय साधक बैठ-बैठे ही निद्रा के वशीभूत हो जाते थे। इसको दूर करने के लिए मैंने सामूहिक प्रार्थना तथा ध्यान की प्रथा चलायी। एक साधक सभी कुटीरों के सामने घण्टी बजाता तथा सभी साधकों को सामूहिक प्रार्थना के लिए बुला लाता था। मैंने भी कई महीनों तथा वर्षों तक सामूहिक प्रार्थना में भाग लिया।

प्रार्थना तथा स्वाध्याय-कक्षाएँ

श्री गणेश की प्रार्थना, गुरुस्तोत्र तथा महामन्त्र-संकीर्तन के साथ सत्संग प्रारम्भ। होता। एक साधक गीता का एक अध्याय पढ़ कर व्याख्या करता था। दूसरा साधक चित्त की एकाग्रता तथा ध्यान पर कुछ संकेत देता। अन्त में मैं आधे घण्टे तक शीघ्र आध्यात्मिक विकास पर कुछ बोलता। मैं उन्हें मन की दुर्वृत्तियों को दूर करने तथा मन और चंचल इन्द्रियों को वश में करने के विविध उपाय बताता। मैं नैतिक पूर्णता पर विशेष बल देता था। दश शान्ति मन्त्रों के सामूहिक पाठ के साथ सत्संग-विसर्जन होता था। साधक सारे दिन के कार्य में भी ईश्वरीय चेतना को बनाये रखते थे।

कुछ साधक ब्रह्मानन्द-आश्रम में रहते थे, जो मेरे कुटीर से एक फर्लांग की दूरी पर स्थित है। कई बार मैं अचानक उनके कुटीरों पर चार बजे प्रातः जा कर ॐ का कीर्तन करता और उन्हें आध्यात्मिक साधना के लिए जगा दिया करता था। सामूहिक ध्यान के लिए मैं सभी साधकों को बाध्य नहीं करता था। मैं उनके मनोनुकूल साधना में बाधा नहीं डालना चाहता था। इस प्रकार मैं अपने साधकों के आध्यात्मिक उत्थान की ओर पूरा-पूरा ध्यान देता था। जो साधक सामूहिक ध्यान तथा प्रार्थना में भाग लेते थे, आज भी वे बताते हैं कि किस प्रकार मेरे छोटे-छोटे आध्यात्मिक प्रवचनों के द्वारा उनमें प्रेरणा का संचार होता था।

सायंकाल को भी मैं तीन-चार बजे के बीच सामूहिक अध्ययन-वर्ग लगाता था। एक साधक मेरी किसी भी पुस्तक के एक अध्याय का पाठ करता था। दूसरे दिन मुख्य साधना-सम्बन्धी जानकारी के विषय में मैं प्रश्न पूछता था। मैंने कई ढंगों से साधकों को प्रशिक्षित किया है। वे सभी उपनिषद्-मन्त्रों के पाठ, कीर्तन तथा संक्षिप्त भाषण देने में प्रवीण हो गये। मैं एक विद्यार्थी को प्रश्न पूछने के लिए कहता तथा दूसरे साधक उसका उत्तर देते थे। सन्ध्या को लिखित जप करवाता तथा प्रातः को त्राटक एवं अन्य योगाभ्यास । दिन में सभी को योग तथा दर्शन पर लेख तैयार करने पड़ते थे अथवा अपने अनुभवों को लिखना होता था। अब भी जब स्कूल के छात्र गण तथा बालक आते हैं, तो मैं उनको अँगरेजी के छोटे वाक्य सिखा देता हूँ और जोरदार भाषण देने के लिए कहता हूँ। बहुतों ने मेरे अँगरेजी कीर्तन 'ईट ए लिटिल' आदि को सीख लिया है।

मैंने संगठन कार्य के लिए भी अपने साधकों को शिक्षित किया। वे टाइप करते, संघ के कार्यों का उचित हिसाब रखते तथा भक्तों, दर्शनार्थियों एवं बीमारों की सेवा करते थे। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्थाओं में भी योग-वेदान्त अरण्य अकादमी प्रबल रूप से सक्रिय कार्य कर रही थी।

दर्शनार्थियों की सेवा

जब मेरे पास दर्शनार्थी गण आते, तो मैं घरेलू मामलों में बातचीत करने के स्थान पर उनसे अतीत को भूल कर अपने साथ कीर्तन करने के लिए कहता था। मैं उन्हें संगीत, भजन, कीर्तन तथा दर्शन सिखाता था। जब भक्त गण आश्रम में आते हैं तो मैं उनके पढ़ने के लिए दूसरे दिन ही पुस्तक देता हूँ तथा उनसे प्रश्न पूछता हूँ। मैं उनकी सारी शंकाओं का समाधान करता तथा उनके कष्टों एवं बाधाओं को दूर करने के लिए आवश्यक परामर्श देता हूँ।

मेरी वैयक्तिक देख-रेख पा कर सभी लोग अति-आनन्दित रहते हैं। हिमालय पर इस पवित्र केन्द्र में दिये गये नियमित तथा क्रमिक कार्यों द्वारा भारत तथा विदेश के सुदूर भागों से हजारों साधक आकर्षित हुए। दिव्य जीवन संघ, योग-वेदान्त अरण्य अकादमी तथा शिवानन्द आश्रम सभी साधकों में विख्यात हो चले। शिवानन्द आश्रम, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द योग स्कूल आदि शाखाओं की स्थापना द्वारा विभिन्न केन्द्रों पर ये सब कार्य सुव्यवस्थित रूप से हो रहे हैं।

आश्रम में साधकों के आहार पर मैं बहुत ध्यान रखता हूँ। यहाँ वे सुन्दर स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए पर्याप्त आहार प्राप्त करते हैं। विलास अथवा इन्द्रिय-तृप्ति के लिए नहीं, वरन् साधना में प्रगति करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं।

रविवार को नमक-रहित भोजन, एकादशी के दिन कुछ उबले हुए आलू तथा रोटी अथवा कुछ लोगों के लिए केवल दूध तथा फल आरम्भ किये हैं। दर्जन-भर साधकों के साथ यह कार्य आरम्भ किया गया था।

कुछ ही समय के अनन्तर छुट्टियों में दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास तथा भारत के अन्य नगरों से बहुत से भक्त गण आने लगे। तब मैंने सामूहिक साधना का श्रीगणेश किया। साधना के मुख्य पहलुओं पर एक प्रकार से योग के अभ्यासगत पक्षों पर आध्यात्मिक सम्मेलन होता था। कालान्तर में साधना-सप्ताहों के रूप में इसका रूपान्तरण हो गया। ईस्टर तथा बड़े दिन की छुट्टियों में साधना-सप्ताह मनाये जाने लगे और अब गत बीस वर्षों से यह एक नियमित कार्यक्रम बन गया है।

भारत में दिव्य जीवन संघ की कई शाखाओं में भी आश्रम के साधना-सप्ताहों के अनुरूप ही सम्मेलनों का आयोजन होता है। इन सम्मेलनों में वे बड़े-बड़े नेताओं को आमन्त्रित करके उनके प्रवचनों का लाभ उठाते हैं। इस अवसर पर परिपत्र तथा पुस्तकें छपवा कर उनका निःशुल्क वितरण करवाते हैं। इस प्रकार सारे संसार में आध्यात्मिक जागरण के लिए सक्रिय प्रचार किया जा रहा है।

पंचम अध्याय

मेरा धर्म, उसकी पद्धति तथा प्रचार

दिव्य जीवन-अभियान

मैं एकान्तप्रिय हूँ। मुझे समय-समय पर छिपना पड़ता था। मैं नाम तथा यश के पीछे लालायित नहीं रहता। मैंने भाषण तैयार करने के लिए विश्व के सभी धर्मों और ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन नहीं किया। किताबों तथा अखबारों में प्रकाशित करने के लिए मैं सुन्दर लेख लिखने में समय गँवाना पसन्द नहीं करता, न मैं लोगों द्वारा 'महात्मा', 'गुरु महाराज' कहलाना पसन्द करता। मैंने कभी अपना नाम रखने के लिए किसी संस्था की योजना नहीं बनायी; परन्तु ईश्वरेच्छा भिन्न थी। सारा जगत् ईश्वरीय महिमा तथा गरिमा के साथ मेरे पास आने लगा। सहस्रों सत्यान्वेषियों की सच्ची प्रार्थना तथा ज्योति, शान्ति, ज्ञान और शक्ति के प्राप्त्यर्थ जगत् को विस्तृत पैमाने पर सही मार्ग दिखलाने के लिए अपने अनुभवों में दूसरों को भागीदार बनाने की मेरी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण यह सम्भव हो सका।

जब मुझे कुछ सुविधा मिली तथा कार्य करने के लिए योग्य सहायक मिले, तब दिव्य जीवन संघ की स्थापना हेतु स्फुरणा हुई। मैंने ऋषियों एवं सन्तों के सन्देश का प्रचार किया तथा जगत् को शान्ति एवं सुख के मार्ग की शिक्षा दी। दिव्य जीवन संघ की ख्याति के कारण सुदूर देशों से बहुत से विद्वान् तथा धार्मिक जन मुझसे मिलने के लिए आ चुके हैं तथा मेरी निष्काम सेवा में भाग ले कर सम्यक् ज्ञान के प्रसार का महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं,

जिसके द्वारा ही शाश्वत शान्ति एवं सुख की प्राप्ति हो सकती है। दिव्य जीवन संघ की बहुस-सी विदेशी शाखाएँ मेरे लेखों के अंशों से परिपत्रों को छपवा कर अपने-अपने क्षेत्रों में उनका वितरण करती हैं।

समय की माँग

जब मनुष्य स्वार्थ, लोभ, काम, राग आदि में फँस जाता है, तब वह ईश्वर को भूल जाता है। वह सदा अपने शरीर, परिवार तथा सन्तान के चिन्तन में लगा रहता है। वह सदा अपने भोजन, पान, विश्राम तथा सुविधाओं के पीछे परेशान रहता हुआ

संसार-सागर में निमग्न हो जाता है। भौतिकवाद तथा पलायनवाद का ही साम्राज्य है। वह साधारण-सी बातों से ही उत्तेजित हो उठता है और झगड़ने लगता है। सर्वत्र । अशान्ति, दुःख, शोक तथा विद्रोह छाया हुआ है। आज सारा जगत् ही भौतिकवाद के पंजे में आ गया है। नये प्रकार के बमों के आविष्कार से सर्वत्र आतंक छाया हुआ है। सद्ग्रन्थों तथा ऋषियों के सदुपदेशों में लोगों की श्रद्धा नहीं रही है। कुशिक्षा तथा कुप्रभावों के कारण लोग अधार्मिक बन गये हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ-काल से होने वाली आतंकपूर्ण घटनाओं का प्रभाव सभी धार्मिक व्यक्तियों, संन्यासियों, सन्तों तथा धार्मिक पुरुषों पर पड़े बिना नहीं रहा। विश्व-युद्ध की भयंकरता से उनके हृदय पिघल पड़े। युद्धोपरान्त होने वाले संक्रामक रोग तथा विश्वव्यापी निराशा ने उनके कारुणिक हृदय को छू लिया। उन्होंने देखा कि मानव-जाति के अधिकांश दुःख उसके ही कर्मों के कारण हैं। मनुष्य को अपनी भूलों के प्रति अवगत कराना तथा उन्हें सुधारने के लिए बाध्य करना आवश्यक है, जिससे वह अपने जीवन को उन्नत लक्ष्यों के लिए उत्साहपूर्वक लगा सके। यही इस युग की तात्कालिक अपेक्षा अनुभव हुई।

ऐसे पथ-प्रदर्शन के लिए लाखों मनुष्य उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह मूक प्रार्थना सुनी गयी। मैंने दिव्य जीवन संघ के जन्म को देखा, जिसका कार्य है मनुष्य को पाशविक एवं आसुरी शक्तियों से छुड़ा कर उसके इहलौकिक जीवन को दिव्य बनाना।

ठीक इस संकटपूर्ण समय में ही मैंने दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। अब लोग इसे जगत् के लिए वरदान स्वरूप मानते हैं। विश्व के समस्त धर्मों तथा सारे सन्तों एवं पैगम्बरों के उपदेशों का सार ही इसका आधार है। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक, उदार, सर्वग्राही एवं विज्ञान तथा बुद्धि के अनुकूल हैं। इसने बाह्य नाम-रूपों के पीछे छिपे हुए आनन्दमय दिव्यत्व के साक्षात्कार से मनुष्य को इस जागतिक जीवन के दुःखों एवं शोकों से ऊपर उठाने का कार्य अपने हाथ में लिया है।

अच्छे विचार सभी भले मनुष्यों में व्याप्त होते तथा अपना प्रभाव डालते हैं। दिव्य जीवन संघ द्वारा उत्पन्न विचार धाराओं का प्रभाव यूरोप तथा अमेरिका के लोगों पर पड़ा है। फल-स्वरूप अब अखिल विश्व में शान्ति की पिपासा बढ़ चली है। लाखों व्यक्ति प्रक्षेपणास्त्रों के द्वारा मानव जाति के त्वरित विनाश से भयभीत हैं।

आध्यात्मिक पूर्णता के लिए सार्वभौम आदर्श

दिव्य जीवन संघ एक सर्वग्राही एवं सर्वसन्निहित संस्था है। इसके उद्देश्य, आदर्श तथा लक्ष्य अत्यन्त उदार और व्यापक हैं। यह किसी भी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विरोध नहीं करता। इसमें सभी धर्मों तथा मतों के

आधारभूत सिद्धान्त सन्निहित हैं। इसमें कोई सम्प्रदायपरक मत-मतान्तर नहीं है। यह लोगों को आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर करता है। यह संस्था संसार में रहते हुए किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा धर्म के सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी मनुष्यों को सरलतापूर्वक दिव्य जीवन की ओर अग्रसर होने में समर्थ बनाती है।

इस संस्था ने समस्त संसार में प्रबल चेतना जाग्रत की है और कर्म करने में स्वतन्त्रता का नवजीवन, सांसारिक झंझटों के मध्य सामंजस्यपूर्ण जीवन एवं मानसिक निरासक्ति तथा कामनाओं, अहंभाव और मैं पन से वैराग्य द्वारा सुखी जीवन का मार्ग प्रशस्त करने में इस संघ का महान् योगदान है। संघ के सिद्धान्त, लक्ष्य, आदर्श तथा कार्य-प्रणाली को सार्वलौकिक प्रशंसा प्राप्त है। यह साधना के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देता है। यह वैज्ञानिक तथा युक्तिसंगत ढंग से समन्वययोग की शिक्षा देता है। जगत् के सभी भागों से विभिन्न संस्थाओं एवं समाजों के सदस्य दिव्य जीवन संघ के सदस्य बन कर मुझसे आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने हेतु पत्र लिखते हैं। मैं उन पर विशेष ध्यान रखता हूँ तथा पत्र-व्यवहार द्वारा आध्यात्मिक प्रगति के लिए उन्हें प्रेरित करता हूँ। दिव्य जीवन संघ की यह घोषणा है कि कोई भी व्यक्ति जीवन के किसी भी आश्रम एवं अवस्था में हो-चाहे वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हो; चाहे मेहतर, ब्राह्मण, शूद्र अथवा क्षत्रिय हो; जगत् का व्यस्त व्यक्ति हो अथवा हिमालय का मूक साधक-वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ज्ञान पर संन्यासियों का ही एकाधिकार नहीं है।

संघ यह समझाता है कि ज्ञानयोग का केन्द्रीय आधार होने पर भी मन तथा हृदय की शुद्धि के लिए कर्मयोग आवश्यक है। सुन्दर स्वास्थ्य, शक्ति तथा प्राण की शुद्धि और चित्त की स्थिरता के लिए 'हठयोग' की, संकल्पों ने नाश तथा ध्यान में एकाग्रता लाने के लिए 'राजयोग' की और अविद्या के आवरण को दूर करके अन्ततः अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप में निवास करने के लिए 'ज्ञानयोग' की आवश्यकता है।

संकटकालीन-स्थिति

- छात्र अधार्मिक बन गये थे।
- धर्म में उनकी श्रद्धा नहीं रह गयी थी।
- विज्ञान के प्रभाव में पड़े वे धर्म की उपेक्षा करने लगे।
- वे धूमपान करने तथा जूआ खेलने लगे।
- लड़कियाँ फैशन में पड़ गयीं।
- अधिकारी गण भौतिकवादी बन गये।
- जन-स्वास्थ्य क्षीण हो चला।
- लोग धर्मग्रन्थों से घृणा करने लगे।
- भौतिकवाद का बोलबाला हो चला।

इस संकट-काल में,

- ईश्वर की महिमा को पुनः जाग्रत करने के लिए
- योग के ज्ञान के प्रचार के लिए
- समन्वययोग की शिक्षा देने के लिए

- लोगों में भक्ति एवं श्रद्धा भरने के लिए
- मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान हेतु कार्य करने के लिए
- हर घर में शान्ति एवं सुख लाने के लिए

मैंने दिव्य जीवन संघ की स्थापना की तथा हिमालय के पवित्र मनहर प्रदेश में ऋषिकेश में पवित्र गंगा के तट पर- योग-वेदान्त अरण्य अकादमी स्थापित की।

संघ के कार्यों का द्रुत विकास

मैंने १९३६ में मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान के लिए दिव्य जीवन संघ का श्रीगणेश किया। मैंने अनेकों सच्चे साधकों को योग में प्रशिक्षित किया। उनकी त्वरित आध्यात्मिक प्रगति के लिए मैंने प्रातः सामूहिक प्रार्थना तथा सामूहिक आप्तनों की परम्परा चलायी। स्थानीय निर्धन जनता तथा हजारों तीर्थयात्रियों के लिए धर्मार्थ औषधालय चलाया। निपुण साधकों को भक्ति, योग तथा वेदान्त में भाषण देने के लिए विभिन्न केन्द्रों में भेजा गया। प्रार्थना तथा पूजा के लिए एक छोटे-से मन्दिर का निर्माण हुआ। जब शिक्षा पाने के लिए साधक बड़ी संख्या में आने लगे, तो उन्हें आवास तथा भोजन की सुविधाएँ प्रदान करनी पड़ीं। इस प्रकार शिवानन्द आश्रम अस्तित्व में आया।

जब योग की सभी शाखाओं में नियमित प्रवचन की व्यवस्था हुई, तब योग-वेदान्त अरण्य अकादमी का समारम्भ हो गया। अखिल विश्व के साधकों के सहायतार्थ योग के व्यावहारिक पक्ष पर आवश्यक ग्रन्थ तथा आधा दर्जन पत्र-पत्रिकाएँ छापने के लिए कई स्वतःचालित यन्त्रों वाले 'योग-वेदान्त अरण्य अकादमी मुद्रणालय' की स्थापना हुई। छोटा-सा औषधालय बढ़ कर शिवानन्द चिकित्सा-विभाग बन चला, जिसमें सामान्य चिकित्सालय तथा नेत्र-चिकित्सालय हैं। यद्यपि दिव्य जीवन संघ केन्द्रीय संस्था है, फिर भी उसके विकसित हुए विभिन्न कार्यों को व्यवस्थित रूप देने के लिए अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ। अब यह आश्रम एक आध्यात्मिक नगर बन गया है जो विशाल फैक्ट्री के समान प्रतीत होता है जहाँ हिमालय की अनुपम अवर्णनीय शान्ति का साम्राज्य है।

आध्यात्मिक साधक जो आश्रम में आ कर कई महीने अथवा वर्षों तक ठहरते हैं, अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार आध्यात्मिक उन्नति करने हेतु पर्याप्त क्षेत्र पाते हैं, चाहे वे आश्रम की विभिन्न संस्थाओं में कर्म द्वारा अथवा मन्दिर में या निकटवर्ती जंगलों की विजनताओं में मूक ध्यान का अभ्यास करें और प्रत्येक अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप क्षेत्र चुन लेता है।

दिव्य जीवन का मार्ग

इस जीवन के उपरान्त स्वर्ग पहुँचने के लिए प्रयत्नशील बनने की अपेक्षा दिव्य जीवन संघ के अनुगामी इस पृथ्वी पर स्वर्ग लाने की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। दिव्य जीवन संघ के सिद्धान्त पूर्णतः मत-निरपेक्ष तथा सार्वभौमिक हैं। इस मार्ग का आधार है यह त्रिक-सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य का पालन करना। ये जगत् के सभी धर्मों के मौलिक सिद्धान्त हैं। अतः दिव्य जीवन संघ को सभी धर्मों, संस्कृतियों के मानने वाले, लोगों की सहकारिता प्राप्त है। संघ द्वारा निर्दिष्ट जीवन की योजना तथा लक्ष्य पृथ्वी पर उन सभी के लिए समान रूप से मान्य हैं, जो शोक से ऊपर उठ कर शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हैं। यही दिव्य जीवन का मार्ग है।

कोई गुप्त सिद्धान्त नहीं

दिव्य जीवन-साधना का मार्ग सारे योगों तथा सभी धर्मों के प्रमुख सिद्धान्तों का सार-तत्त्व है। इसमें हर व्यक्ति अपने धर्म एवं विश्वासों के अनुकूल पक्षों को प्राप्त करता है। इसके आदर्शों को उग्ररूपेण कार्यान्वित करने की आवश्यकता आज सबसे अधिक है; क्योंकि विज्ञान, राजनीति तथा समाज-शास्त्र में हुए आधुनिक अनुसन्धानों ने मानव-जाति को अज्ञेयवाद तथा आत्म-विनाश के भयंकर खड्ड के किनारे पर ला छोड़ा है। घृणा तथा हिंसा, असत्य तथा धोखा, पाप तथा अशुद्धता आज की सभ्यता के अंग बनते जा रहे हैं।

इस अधोमुखी प्रवृत्ति को दृढ़ विरोधी शक्ति ही कुछ सीमा तक रोक सकती है। अतः आज के ध्वंसात्मक प्रभावों का सामना करने के लिए तथा मनुष्य को विनाश की ओर जाने से रोकने के लिए दिव्य जीवन संघ की स्थापना हुई। मैंने शान्ति, शुभेच्छा, आध्यात्मिक बन्धुत्व तथा आत्मा की एकता के साक्षात्कार का सन्देश देता हूँ। दिव्य जीवन-साधना में संकीर्ण मत, गुप्त सिद्धान्त तथा रहस्यात्मक विभाग नहीं हैं। सत्य के प्रेमी इसकी पूर्णता, असीम सुन्दरता, गरिमा तथा महिमा को पहचानते हैं। यह सभी के लिए आश्रय एवं शरण प्रदान करता है। यह हृदय के धर्म का, एकता के धर्म का साक्षात्कार करने में मनुष्य को समर्थ बनाता है।

सच्चा धर्म क्या है?

तर्क अथवा विवाद के द्वारा सच्चा धर्म नहीं सिखाया जा सकता। केवल उपदेशों अथवा नीति-वाक्यों के द्वारा आप किसी व्यक्ति को धार्मिक नहीं बना सकते और न ही अपने धर्मग्रन्थों के बोझ अथवा अपने प्रधान के चमत्कारों की ओर इंगित करके आप किसी को प्रभावित कर सकते हैं। यदि आप उन्नति करना तथा जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, तो धर्म का अभ्यास और इसके उपदेशों का पालन कीजिए। चाहे आपका धर्म कोई भी हो, कोई भी आपका प्रणेता हो, कोई भी आपका देश अथवा आपकी भाषा vec BT कैसी भी आपकी अवस्था हो, चाहे आप पुरुष हों अथवा स्त्री, यदि आपको अहंकार को कुचलने, मन के निम्न स्वभाव को नष्ट करने तथा शरीर, मन तथा इन्द्रियों पर आधिपत्य जमाने की विधि ज्ञात हो, तो आप शीघ्र उन्नति कर सकते हैं। वास्तविक शान्ति तथा नित्य-सुख के लिए मैंने यही मार्ग ढूँढ़ निकाला है। अतः मैं गरमागरम बहस तथा विवाद के द्वारा लोगों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न नहीं करता।

वास्तविक धर्म तो हृदय का धर्म है। सर्वप्रथम हृदय को शुद्ध बनाना होगा। सत्य, प्रेम तथा ब्रह्मचर्य ही वास्तविक धर्म के आधार स्तम्भ हैं। निम्न प्रकृति पर विजय, मन का निग्रह, सद्‌गुणों का उपार्जन, मानवता की सेवा, सद्भावना, पारस्परिक बन्धुत्व-भाव-ये ही अच्छे धर्म के आधार हैं। दिव्य जीवन संघ के सिद्धान्तों में ये आदर्श निहित हैं। मैं इन आदर्शों के व्यापक प्रसार पर बहुत बल देता हूँ। मैं साधकों का कौतूहल दूर करने के लिए सद्ग्रन्थों से अनुकूल प्रामाणिक कथनों की खोज में समय नष्ट नहीं करना चाहता। मैं व्यावहारिक जीवन व्यतीत करता हूँ तथा साधकों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता हूँ, जिससे वे भी अपने जीवन को तनुकूल ढाल सकें। यह जान लीजिए कि शरीर-चैतन्य से परे जाने पर ही सच्चे धर्म का आरम्भ होता है। सारे ऋषियों तथा सन्तों के उपदेशों के सार, सारे धर्मों एवं मतों के आधार एक ही हैं। लोग व्यर्थ ही अनावश्यक वस्तुओं के लिए झगड़ कर लक्ष्य को भुला देते हैं।

भगवान् करे, यह दिव्य जीवन-आन्दोलन, जो शान्ति, समता तथा उन्नत जीवन का सन्देश वाहक है, सारे जगत् में अपनी आभा एवं महिमा को विकीर्ण करे!

दिव्य जीवन का सन्देश

इस असत्य जगत् में कदम-कदम पर अनेकानेक कठिनाइयों का बाहुल्य है। भगवान् बुद्ध ने वर्षों तक स्थिर साधना एवं प्रयास द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था। आधुनिक विचारकों के पास न तो पर्याप्त समय है और न उग्र तपस्या एवं साधना के लिए धैर्य ही है; तथा कई प्रकार की साधनाएँ तो अन्धविश्वास समझी जाने लगी हैं। आधुनिक समाज को साधना के महत्त्व को समझाने तथा उन्हें साधना की उपयोगिता और शक्ति पर विश्वास दिलाने के लिए मैंने दिव्य जीवन का सन्देश सिखाया। यह धार्मिक जीवन की ऐसी प्रक्रिया है जो सभी के लिए अनुकूल है। यह अधिकारियों से ले कर खेतों में काम करने वाले किसानों तक के लिए समान रूप से अनुकूल है। वे अपने-अपने कामों में बिना किसी प्रकार के व्यवधान के ही इसका अभ्यास कर सकते हैं। दिव्य जीवन की विशेषता इसकी सरलता में है। यह साधारण मनुष्य के नित्य व्यवहारों के अनुकूल है। अपने-अपने धर्मों के उपदेशों का पालन करते हुए दिव्य जीवन के सिद्धान्तों का अनुसरण करके मनुष्य शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

व्यावहारिक रूप

सत्य के सामान्य अन्वेषक प्रायः मन की चालों में जा फँसते हैं। आध्यात्मिक मार्ग को अपनाने वाला साधक लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व ही उद्घान्त हो जाता है और स्वाभाविक रूप से आधी दूरी तय करते ही उसे अपनी साधना को ढीली छोड़ने का प्रलोभन हो जाता है। बाधाएँ बहुत हैं; परन्तु जो दिव्य जीवन यापन द्वारा स्थिरतापूर्वक अग्रसर होता जाता है, वह निश्चय ही मुमुक्षुत्व के धार्मिक लक्ष्य- आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त करता है। मैंने अपने सारे लेखों में प्रत्येक साधक को विकास के विभिन्न स्तरों, रुचि एवं प्रकृति के अनुकूल उपद्रवी इन्द्रियों के अनुशासन, मन पर विजय, हृदय की शुद्धि, आन्तरिक शान्ति तथा आध्यात्मिक बल की प्राप्ति पर बल दिया है।

दिव्य जीवन संघ की शाखाएँ तथा आध्यात्मिक साधक

आध्यात्मिक साधकों तथा दिव्य जीवन संघ की शाखाओं के लिए निम्नांकित सन्देश है :

"आप इस जगत् में आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए आये हैं। आप परम एवं नित्य आनन्द की प्राप्ति के लिए यहाँ आये हैं। मानव जीवन का उद्देश्य है दिव्य चैतन्य की प्राप्ति। जीवन का लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार। मनुष्य इन्द्रिय-भोग-परायण पशु नहीं है। मनुष्य स्वरूपतः नित्य शुद्ध, मुक्त, अमर तथा दिव्य सत्ता है। अनुभव कीजिए कि 'मैं अमर आत्मा हूँ।' आप सच्चिदानन्द हैं। याद रखिए कि 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-आप जन्म-रहित, नित्य, अक्षय तथा पुराण हैं।' इस उन्नत चैतन्य में रहने का अर्थ है जीवन में प्रति-क्षण अचिन्त्य सुख का अनुभव करना, आत्मा में असीम स्वतन्त्रता का अनुभव करना। यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। यही एकमेव जीवन-लक्ष्य है। सत्य, शुद्धता, सेवा तथा भक्ति के द्वारा इसका साक्षात्कार करना ही दिव्य जीवन आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य है।

"इस न्यष्टि अस्त्रों, 'न्यूक्लियर अस्त्रों' के युग में सामूहिक विनाश का आतंक छाया हुआ है। तथाकथित विद्वान् तथा सभ्य मानव-समाज के अधिकांश समूहों की

नीतियों पर घृणा अथवा द्वेष का ही बोलबाला है। आज का प्रगतिशील युग वास्तव में अधिकांश विचारों तथा मूल्यों में, आदर्शों तथा नीति के आचरण में पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। इस संकट-काल में जगत् के सारे नर-नारी पवित्र भूमि भारत की ओर ज्योति तथा ज्ञान के लिए दृष्टि लगाये बैठे हैं। यह आपका दिव्य कर्तव्य है कि आप आध्यात्मिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक आदर्श की इस ज्योति को विश्व के कोने-कोने में प्रसारित करें।"

मानव का एकत्व

उपनिषदों का कहना है-"यह सब आत्मा ही है। एक ही सच्चिदानन्द-रूप आत्मा सभी भूतों का अन्तर्वासी है।" सारी मानवता की आध्यात्मिक एकता का पाठ ही आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। जो कुछ भी हुआ है तथा जो-कुछ भी भविष्य में होगा, वह सब एक ही नित्य वस्तु है। दिव्य जीवन का सन्देश है-"सभी चेहरों में ईश्वर को देखें। सभी की सेवा करें। सभी से प्रेम करें। सभी के प्रति दयालु बनें, कारुणिक बनें। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही आत्मा समझें। ईश्वर की पूजा का भाव रख कर अपने बन्धुओं की सेवा करें। मनुष्य की सेवा वास्तव में ईश्वर की ही उपासना है।" यह सन्देश देश के कोने-कोने में स्वतन्त्रता का गुंजन करे। यह सन्देश प्रत्येक घर में और प्रत्येक हृदय में प्रवेश करे।

जगत् के सारे महान् धर्म मानव-जीवन के इस आध्यात्मिक आधार के सन्देश की घोषणा करते हैं। वे सभी जगत्पिता परमात्मा के अधीन विश्व-बन्धुत्व की घोषणा करते हैं। अच्छी तरह जान लीजिए कि वेदों का हृदय, बाइबिल, कुरान तथा सभी धर्मग्रन्थों का हृदय एक ही है। सभी एक कण्ठ से प्रेम एवं समता, भलाई एवं दयालुता, सेवा तथा उपासना के सुमधुर संगीत का गान करते हैं। नाम-रूपों की सीमा-रेखाओं का त्याग करें। सभी भूतों की एकता का साक्षात्कार करें। अपने आध्यात्मिक प्रेम में सभी को सन्निहित करें। शान्ति के जियें। विश्व-प्रेम के लिए जियें। दिव्य जीवन जियें।

दिव्य जीवन की पुकार

दिव्य जीवन की शाखा आधुनिक युग के मनुष्य के लिए महान् वरदान है। यह ईश्वरीय आशीर्वाद है। यह एक सक्रिय योग का क्षेत्र है, व्यावहारिक वेदान्त का क्षेत्र है। दिव्य जीवन का प्रसार ही मानव-जाति की आशा है। दिव्य जीवन के द्वारा मनुभ है। दिन, दुःख तथा क्लेश से मुक्त हो कर, शोक का अतिक्रमण कर इसी जीवन में अभी और यहीं शान्ति एवं सुख को प्राप्त कर लेगा। दिव्य जीवन मानव-जाति को शान्ति एवं बन्धुत्व की प्राप्ति कराता है। यह मनुष्य को शुद्ध बनाता, उसके स्वभाव को संस्कृत बनाता तथा उसके गुप्त दिव्य रूप को प्रस्फुटित करता है। यह दिव्य जीवन भारत की ओर से अखिल विश्व के लिए अपूर्व उपहार है।

उपनिषदों की घोषणा हर ग्राम, शहर तथा नगर में गूँज उठे। भगवन्नाम का सुमधुर कीर्तन सब दिशाओं में गूँज उठे। हर हृदय में सद्गुण का निवास हो। जीवन के हर क्षेत्र में सदाचार तथा सद्गुणों की अभिव्यक्ति हो । दिव्य जीवन व्यावहारिक हो। दिव्य जीवन के आदर्श व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ हों। लोगों के जीवन में दिव्यत्व का अधिकाधिक प्राकट्य हो। यह अत्यन्त आवश्यक है। सच्चे बनिए। मिल कर काम कीजिए। परिस्थितियों के अनुकूल बनिए । सदा याद रखिए कि कर्म महत्त्वपूर्ण है; वैयक्तिक मत तथा विचार नहीं। अतः सारे भेदों को विलीन कर संघटित हो कर शुद्ध जीवन तथा आध्यात्मिक पूर्णता के लिए काम कीजिए।

व्यक्ति की पूर्णता अन्ततोगत्वा मानव जाति को पूर्णता की ओर ले जाती है। निष्काम सेवा के सिद्धान्त का प्रचार कीजिए। सभी को योग-मार्ग पर चल कर जीवन का लक्ष्य, सुन्दर स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्ति के लिए प्रेरित

करें। मैंने नियमों, प्रतिन्धों आदि के द्वारा साधकों की सहायता करने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने सभी साधकों को पत्रों, पत्रिकाओं एवं अमूल्य साहित्य के द्वारा निर्देश दिये, जिससे वे सामूहिक प्रार्थना, ध्यान, भजन तथा कीर्तन के द्वारा आध्यात्मिक स्पन्दनों का सृजन करें। आध्यात्मिक उन्नति के लिए संख्या का महत्त्व नहीं है। एक सच्चा साधक भी जगत् को अकेला ही हिला सकता है और जगत् में ज्योति तथा ज्ञान ला सकता है।

१९३६ से १९४० के बीच साधकों को जो पत्र मैंने लिखे हैं, उनके कुछ उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं, जिनसे आपको विदित होगा कि किस प्रकार मैंने सारे संसार में क्रियात्मक दिव्य जीवन अभियान आरम्भ किया और किस प्रकार दिव्य जीवन संघ की तीन सौ से अधिक शाखाएँ स्थापित कीं।

(१) सामूहिक साधना का महत्त्व

"सामूहिक साधना, सार्वजनिक प्रार्थना तथा ध्यान के द्वारा तीव्र गति से विकास होता है। दिव्य जीवन की शाखाओं का उद्देश्य धन, नाम अथवा यश कमाना नहीं है। विभिन्न केन्द्रों पर आध्यात्मिक स्पन्दनों का निर्माण कर संसार में समता तथा शान्ति लाना ही इनका लक्ष्य है। साप्ताहिक सभाएँ आयोजित कीजिए । आध्यात्मिक रुचि रखने वाले मित्रों को बुलाइए। भक्तों के संशयों को दूर करिए। आप दार्शनिक पुस्तकों का एक पुस्तकालय रखिए। स्थानीय विद्वानों को प्रवचन देने के लिए आमन्त्रित कीजिए। समय-समय पर मेरे 'बीस आध्यात्मिक नियम' तथा परिपत्रों को छपवा कर उनका निःशुल्क वितरण कीजिए। इस प्रकार आप दिव्य लक्ष्य का बीजारोपण कर सकते हैं। यह शनैः शनैः उगेगा और जगत् का आध्यात्मिक कल्याण करेगा। इसके द्वारा आपकी अपनी प्रगति में योग मिलने के साथ ही सारी मानव-जाति का भी विकास होगा।"

(२) दिव्य जीवन संघ की शाखा कैसे खोली जाये ?

'अच्छा प्रारम्भ होना आधा कार्य होने के समान है।' मैं विशाल योजना और कार्यक्रमों में अभिरुचि नहीं रखता। यदि सुन्दर प्रारम्भ हुआ तथा कार्यकर्ताओं में हार्दिकता, श्रद्धा तथा भक्ति है तो सफलता निश्चित है। मैंने सच्चे साधकों को अधोलिखित आशय के पत्र भेजे :

"आपने आश्चर्यजनक और सुन्दर कार्य आरम्भ किया है, इसकी जड़ें गहरी जमेंगी तथा फूल प्रस्फुटित होंगे। आप किसी घर में, कमरे में योग-वर्ग लगा सकते हैं। एक निर्देशन-पट भी बनवा लीजिए। सप्ताह में एक बार बैठक बुलायें। अपने मित्रों से पुस्तकों का संग्रह कर एक पुस्तकालय बना लें। मैं अपने सारे प्रकाशनों को भेजूंगा। सामान्य व्यय के लिए आप अपने सदस्यों से थोड़ा-थोड़ा चन्दा ले सकते हैं। निम्नांकित लक्ष्य तथा उद्देश्य रखें :

(क) योग के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना;

(ख) योगासन, प्राणायाम तथा सदाचार-शिक्षा के द्वारा युवकों को समुन्नत बनाना;

(ग) ऋषियों तथा ज्ञानियों के ज्ञान का प्रसार कोने-कोने में करना; तथा

(घ) विश्व-बन्धुत्व तथा विश्व-प्रेम विकसित करना ।

"कभी भी हतोत्साह न हों। बहुतों ने अपने घरों में ही दिव्य जीवन संघ की शाखा खोली है। परिवार के सब सदस्य प्रातः-सायं सामूहिक प्रार्थना तथा भजन के लिए एकत्र हो कर कीर्तन करते हैं। इससे आध्यात्मिक

स्पन्दनों का निर्माण हो कर समस्त परिवार में शान्ति तथा ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। अपने मित्रों के मध्य ही-चाहे दो व्यक्ति से मिल कर कुछ तो कीजिए ही।"

जो दिव्य ज्ञान का प्रसार करने के इच्छुक हैं, ऐसे उत्साही साधकों को विस्तृत उपदेश देने के लिए मैं सदा तत्पर हूँ :

"कुछ सदस्यों को एकत्र करें। मेरी पुस्तकों के कुछ पृष्ठों को पढ़िए । साधकों की शंकाओं का समाधान कीजिए। उनसे जप, कीर्तन, ध्यान तथा गीता का स्वाध्याय कराइए। उनमें आध्यात्मिक डायरी भरने की तथा लिखित जप करने की आदत डलवाइए । आपमें ऐसी असाधारण बातें, ज्ञान और क्षमताएँ हैं, जिनका आपको पूर्ण विश्वास नहीं है अथवा आपको ज्ञान नहीं है। जो कुछ भी आपके पास है, उसका वितरण कीजिए। इससे सारा जगत् लाभान्वित होगा। अपने स्थान पर ही एक मण्डली तैयार कर लीजिए तथा सारे नगर के भिन्न-भिन्न भागों में इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ आरम्भ कीजिए। अविचलित रहिए। आशावादी बने रहिए। आप चमत्कार कर सकते हैं। सुख एवं शान्ति विकीर्ण कीजिए। काम की निश्चित योजना रखिए। थोड़ा काम कीजिए। यही पर्याप्त है। आप अपना समय अच्छी तरह से और उपयोगी रूप से बिता सकते हैं। फूल के खिलने पर मधुमक्खियाँ स्वयं आने लगती हैं। अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं है, स्विच दबाइए और शक्ति प्रवाहित होगी। मैं आपकी सफलता, पूर्णता तथा मुक्ति की कामना करता हूँ।

"शुद्ध वायु में अपने कुछ मित्रों के साथ बैठ कर ध्यान कीजिए। सामूहिक योगासन-प्रदर्शनों का आयोजन कीजिए। पाँच मिनट तक भगवान् के किसी चित्र पर या ॐ पर त्राटक का अभ्यास कीजिए। एकादशी के दिन उपवास अथवा फल पर ही निर्वाह करने का नियम आरम्भ करिए। विभिन्न चक्रों के विषय में बताइए।

"नित्य रात्रि में सोने से पहले अगले दिन का अपना पाठ तैयार कर लीजिए। धारणा कीजिए, विचारों का संग्रह कीजिए। अपनी नोट-बुक में उनको लिख लीजिए । यदि आप भाषण न दे सकें, तो लिखित पत्र पढ़िए । अल्प कुम्भक तथा जप के द्वारा आपमें पुनः शक्ति भर जायेगी। पौष्टिक आहार, फल तथा दूध का सेवन कीजिए।

"यदि आप सुन्दर भाषण न दे सकें, तो लिख लीजिए तथा अपने हृदय के अन्तरतम से बलपूर्वक उसको पढ़ कर सुनाइए। शनैः-शनैः आपमें वक्तृत्व-शक्ति उत्पन्न होती जायेगी। अच्छे जिज्ञासु साधकों के मिलने पर आप उन्हें भी ऐसे ही समूह-निर्माण का आदेश दीजिए। इससे आपके भावी कार्य में सुविधा होगी। जिसके भी सम्पर्क में आप आते हैं, उससे नित्य गीता के कुछ श्लोक पढ़ने तथा गायत्री-जप करने के लिए कहिए। बहुतों को दीक्षा दीजिए। मन्त्र तथा जप के महत्त्व को समझाइए। जप के लिए माला प्रारम्भ कर दीजिए।"

(३) आध्यात्मिक प्रवाह जीवित रहना चाहिए

मैं सावधानीपूर्वक शाखाओं के कार्यों की निगरानी करता हूँ तथा यदा-कदा उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ। मैं योग्य तथा उन्नत साधकों को भेजा करता हूँ, जिससे आध्यात्मिक प्रवाह जीवित रहे तथा शाखा के सदस्यों को अपनी प्रवृत्तियों को बढ़ाने में प्रोत्साहन मिले। उनमें से एक को भेजे हुए मेरे ये निर्देश हैं :

"आजकल शाखा कैसी है-मृत, श्वास लेती हुई अथवा जीवन से परिपूर्ण ? उच्च विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की सहायता से योगासनों का मैजिक लैटर्न का प्रदर्शन कीजिए। इस कार्य को अवश्य कीजिए। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश की यात्रा के समय मैंने सभी स्कूलों में ऐसा कराया था। समय-समय पर अपने कार्यों का विवरण भेजते रहिए। कभी भी व्यर्थ बहाने न कीजिए। संकोच न करिए। जनाना वेदान्ती न बनिए । स्कूल तथा

कालेजों में काम करने से हजारों व्यक्तियों के मन में आध्यात्मिक संस्कार जम जाते हैं, जो समय आने पर प्रस्फुटित होंगे।

"साहसी बनिए । एम. ए., न्यायाधीश तथा सर्जन इत्यादि भी सांसारिक ही हैं। रोगी व्यक्तियों के सामने आप अवतार ही माने जायेंगे। वीर बनिए तथा सज्जनता से नम्रतापूर्वक एवं सच्चाईपूर्वक बातें कीजिए। आप श्रोताओं में शक्ति-संचार कर सकते हैं, उन्हें वशीभूत कर सकते हैं। रंगमंच पर एक विशेष सबल व्यक्तित्व रखिए। अपने भाषणों से ज्वाला, उत्साह एवं साहस उगलिए। किसी अवसर को न खोइए। जो-कुछ भी आप कर रहे हैं, वही विश्व को उन्नत बनाने में पर्याप्त है। इस काम को करने के लिए महान् पण्डित बनने की प्रतीक्षा न कीजिए।

"मैं उन शाखाओं से अनेक प्रशंसा-पत्र प्राप्त कर रहा हूँ, जहाँ-जहाँ आपने कार्य किया है। किसी ने भी ऐसा कार्य नहीं किया; यह तो अपूर्व है। जब काम से थकावट हो, तब आप अपने ही कमरे में छिप जायें अथवा परिवर्तन के लिए किसी एकान्त स्थान में चले जायें। मौन-ध्यान से पुनः नव-शक्ति प्राप्त कर द्विगुणित उत्साह के साथ निकलिए। अपनी शक्ति को नियमित रखिए। सारी-की-सारी शक्ति एक ही बार में न उँडेलिए। पर्याप्त विश्राम कीजिए। आराम करना सीखिए। अपने को छिपा लीजिए।"

(४) सेवा ध्यान से भी महान् है

"वर्तमान सेवा-कार्य उस निष्क्रिय तथाकथित ध्यान (निद्रा तथा हवाई किले बनाने) से, जिसे आज के वेदान्ती किया करते हैं, बढ़ कर महान् योग है। यह महान् यज्ञ है। सिंह की तरह काम कीजिए। सिंह की तरह गरजिए। विभिन्न केन्द्रों में होने वाले आपके सुन्दर कार्यों के लिए बधाई ! यह सब 'उसी' की कृपा है। इसका अनुभव कीजिए। 'उसकी' इच्छा ही आपके मन, बुद्धि तथा शरीर के माध्यम से कार्यान्वित होती है। सदा 'उसके' कृतज्ञ बने रहिए। 'उसके' आशीर्वाद एवं कृपा के लिए प्रार्थना कीजिए। यदि भक्त तथा प्रशंसक जन कुछ भेंट दें, तो मिथ्या वैराग्य की धारणा से उसे लेने से इनकार न कीजिए। सेवा-कार्य, औषधि तथा प्रकाशन के लिए रुपये की आवश्यकता होती है। महात्यागी तथा महाभोगी बनिए। आराम कीजिए। अत्यधिक काम न कीजिए। अपनी शक्ति को सुरक्षित रखिए। शुद्ध वायु में गहरी श्वास लीजिए। लोगों से न मिलिए। आवश्यक बिन्दुओं पर थोड़ी-थोड़ी बातचीत करिए । परिश्रम करते हुए अपने स्वास्थ्य का भी विशेष ध्यान रखिए। दूध, फल तथा बादाम का प्रचुर मात्रा में सेवन कीजिए। एक सप्ताह तक आप विश्राम कीजिए। विश्राम का अर्थ है काम में परिवर्तन । सोना, मित्रों के साथ गपशप तथा निरर्थक भ्रमण करना आराम नहीं है।

"हार्दिक भाव से अथक रूप से प्रसन्नता एवं रुचिपूर्वक बिना बड़बड़ाये, चेहरे पर जरा भी सिकन आये बिना आप लोगों की सेवा कीजिए। यह कुछ कठिन है। यथा-शक्ति प्रयास कीजिए। तब यह शुद्ध योग बन जायेगा। आपको ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। आपको जप करने की भी आवश्यकता नहीं है। हर गति, हर श्वास, शरीर की हर चाल को ऊपर बताये अनुसार शुद्ध योग में परिणत कर डालिए। यह ईश्वर की सेवा है। आप 'उसके' ही लिए काम करते, जीवित रहते तथा श्वास आदि लेते हैं। इस भाव को सदा बनाये रखिए। आप शीघ्र ही विश्वात्म-चैतन्य का साक्षात्कार कर सकेंगे। इस बात को याद रखिए- 'कर्म पूजा है, कर्म ध्यान है।' इसे न भूलिए। आपको कर्म तथा ध्यान के द्वारा ही आत्म-विकास करना है। यदि उचित भाव के साथ किया जाये, तो मेहतर का काम भी योग ही है। आश्रम के सभी व्यक्तियों, बड़ों, स्वामियों तथा हर व्यक्ति-चाहे वह जमींदार हो अथवा मेहतर-के चरणों में शिर झुकाना आपका प्रथम कर्तव्य है। एकता का भान करें। प्रसन्न रहें। अनुकूल बनें ।

चोट एवं अपमान सहें। सभी स्थानों तथा परिस्थितियों में अपने मन का समत्व बनाये रखने के लिए मन को प्रशिक्षित करें। तभी आप वास्तव में दृढ़ बन सकते हैं।"

(५) पूर्ण योग

मैं असन्तुलित विकास के लिए प्रोत्साहन नहीं देता। योग की सभी मुख्य शाखाओं के समन्वय हेतु मैं अपने शिष्यों को प्रेरित करता हूँ। हाँ, निष्काम सेवा तथा सद्गुणों के उपार्जन पर अधिक बल देता हूँ। साथ ही साधकों की वैयक्तिक समझदारी के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाता है।

"मैं आप पर नगरों में रहने के लिए दबाव नहीं डालता। आपके लिए आपका स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति अत्यन्त आवश्यक हैं। देखिए, इतने कम समय में ही आपने कितना काम कर दिखाया है। यदि अभी भी आपमें स्फूर्ति है तथा सरलतापूर्वक काम कर सकते हैं, तो कुछ समय तक और रह सकते हैं, अन्यथा आप नागरिक जीवन से विदाई ले लीजिए। यह आपके ही हाथों में है।

"इस महीने के अन्त में आप आ सकते हैं। नगरों में अधिक दिनों तक न रहिए। यह आपकी भलाई एवं विकास के लिए घातक होगा। आपको अब एकान्त की आवश्यकता है। दीर्घ काल तक अध्ययन भी कीजिए। आपका वर्तमान ज्ञान छिछला है। आपकी आन्तरिक प्रकृति भी सुसंस्कृत नहीं हुई है, साधना की आवश्यकता है। द्विगुणित शक्ति एवं उत्साह से गतिशील कार्य हेतु बैट्री चार्ज करने के लिए अब आपको हिमालयी गंगा-तट के वातावरण में विश्राम तथा शान्तिपूर्ण वास की आवश्यकता है। नगरों में दीर्घ काल तक रह लेने के पश्चात् समय-समय पर एकान्त-वास कर लेना चाहिए। इससे आपको लाभ होगा। कृपया यहाँ आइए और अधिक समय तक रहिए। केवल अल्प काल के लिए यहाँ ठहरने से विशेष लाभ न हो सकेगा।

"आप धन्य हैं। ईश्वर की सत्ता है। ईश्वर प्रत्येक वस्तु का अन्तर्वासी है। ईश्वर अन्तर्यामी है। ईश्वर-साक्षात्कार कीजिए। धर्म से ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति होगी। भलाई ईश्वर की ओर ले कर जाती है। प्रेम ईश्वर की ओर प्रवृत्त करता है। नित्य अन्तरात्मा पर ध्यान कीजिए। साधना तथा ध्यान में निमग्न हो जाइए। मौन में प्रवेश कीजिए। ईश्वर की ज्योति बन जाइए। दिव्य जीवन के द्वारा नित्य-सुख प्राप्त कीजिए। जो दूसरों की सेवा के लिए जीता है, वह बहुत सुखी रहता है। वह धन्य है। वह ईश्वर-साक्षात्कार करता है। सेवा हृदय को शुद्ध बनाती तथा दिव्य ज्योति लाती है। आत्मा में संस्थित बनिए। यही सच्ची साधना है। टाइप करते हुए, किताबों का सम्पादन करते हुए, लेखों को लिखते हुए अपने जन्माधिकार को प्राप्त कीजिए। यह गुहा-जीवन से श्रेष्ठ है। यह सक्रिय पूर्ण योग है। नगर में रहते हुए भी अनुभव कीजिए कि आप हिमालय में यहाँ आश्रम में हैं। यही योग है। जनक ने भी शुक को इसी प्रकार जाँचा था।"

(६) सर्वांगीण सेवा-कार्य में रत होना

मैं अपने शिष्यों से ईश्वरीय सन्देश के प्रसार-कार्य में, अपने तथा दूसरों में दिव्य गुणों को उत्पन्न करने हेतु अपनी भाँति सर्वांगीण रूप में संलग्न होने की अपेक्षा रखता हूँ।

"जहाँ भी आप जायें, अपने विचार, सिद्धान्त एवं आदर्श को दीजिए, उनका वितरण कीजिए और उन्हें प्रसारित कीजिए। अपनी आध्यात्मिक भावनाओं का प्रचार कीजिए। दूसरों के साथ सहभागी बनिए । सदा दीजिए, दीजिए, दीजिए। सब-कुछ दे डालिए। कुछ भी न माँगिए। ध्यान तथा स्वाध्याय की आपकी दिनचर्या नियमित रहनी चाहिए। ब्रह्म ही एकमेव सत्य है। इन्द्रियों को हटा लेने पर आप ब्रह्म ही हैं।' 'तत् त्वम् असि'-मैं इन विचारों को

बारम्बार दोहराते हुए भी नहीं थकता। ये विचार आपकी नस-नस तथा रुधिर एवं हड्डी में प्रवेश कर जाने चाहिए। भक्ति एवं निष्काम कर्म के साथ ये विचार सभी के मन में प्रवेश कराइए। इन तीन विचारों को अपनी जेब में, चित्त में सदा रखे रहिए। यह जगत् तथा शरीर छिछला, जाल तथा स्वप्न है।

"सहस्रों को आसन की शिक्षा दीजिए। सारे स्कूल एवं कालेजों में आसन तथा प्राणायाम-प्रदर्शन के साथ मेरे 'ब्रह्मचर्य' लेख को पढ़िए । पाँच या दश मिनट तक मौन-ध्यान के पश्चात् कीर्तन तथा ॐ का उच्चारण कीजिए। सदस्यों को योग तथा वेदान्त के पारिभाषिक शब्दों को समझाइए । सारा नगर आध्यात्मिक स्पन्दन से भर जायेगा। मेरे लेखों का पठन तथा यौगिक शब्दों की थोड़ी व्याख्या-बस, ये ही यौगिक वर्ग-संचालन के लिए पर्याप्त हैं। मैं आपको याद दिलाता हूँ :

(क) जहाँ तक सम्भव हो, सहस्रों विद्यार्थियों को मन्त्र-दीक्षा;

(ख) जप-माला का प्रयोग;

(ग) रात्रि में कीर्तन तथा भजन;

(घ) गीता, आत्मबोध, विवेक-चूड़ामणि, उपनिषद् इत्यादि का स्वाध्याय;

(ङ) निःशुल्क वितरण के लिए कुछ परिपत्र छपवाना ।

"एकादशी के दिन बड़े हाल या मन्दिर में सामूहिक हरि-कीर्तन की व्यवस्था कीजिए। बड़े लोगों द्वारा संक्षिप्त व्याख्यानों का आयोजन कीजिए। अन्त में प्रसाद बाँटिए। सात दिन पहले से ही आवश्यक तैयारियाँ कर लीजिए। जगत् को आह्लादित बना दीजिए। यह पवित्र कार्य है। यही छोटे पैमाने में दिव्य जीवन सम्मेलन है। मैं जानता हूँ कि आप यह कर सकते हैं।

"आप वास्तव में उत्तम कार्य कर रहे हैं। यह एक सुन्दर प्रारम्भ है। जप, कीर्तन, योगासन, स्वाध्याय तथा भाषण के समन्वय की ही आवश्यकता है। अपनी जेब में यादगारी के लिए डायरी रखिए। जो कार्य करने हैं, उन्हें नोट कर लीजिए। इस प्रकार आप अपना सुधार कर सकते हैं, शक्ति विकसित कर सकते हैं। आप प्रकृति तथा उसके विधि-विधानों से अवगत होंगे। अन्य कामों में मन के व्यस्त होते हुए भी आपको अधिक एकाग्रता मिलेगी। हजारों व्यक्ति धार्मिक कार्यों के लिए प्रेरित होंगे। यह आपके लिए चित्त-शुद्धि तथा योग है।

"वैयक्तिक बातचीत के द्वारा आप सच्चा, मूक तथा ठोस कर्म कर सकते हैं। यह आपका ज्ञान तथा प्रकाश की तैयारी का क्षेत्र है। नगर के विभिन्न मुहल्लों में काम आरम्भ करना चाहिए। यह अन्ध-कर्म नहीं है, न यह व्यापार ही है। यह आपके शरीर तथा मन द्वारा किया हुआ ईश्वरीय कार्य है। यदि आप सच्चे हैं तथा स्थिरतापूर्वक सक्रिय कर्म कर रहे हैं, तो पाँच वर्षों में ही आप बहुत से प्राध्यापकों तथा प्रख्यात धार्मिक नेताओं से आगे बढ़ जायेंगे।"

षष्ठ अध्याय

शिवानन्द आश्रम

आध्यात्मिक संस्थाओं की समस्याएँ

ऊँचे लक्ष्य तथा आदर्शों वाली आध्यात्मिक संस्थाओं का समारम्भ तथा संचालन उन्हीं महात्माओं द्वारा होना चाहिए जो पूर्णतः मुक्त, सिद्ध तथा निःस्वार्थ हैं। यदि स्वार्थी लोगों द्वारा धार्मिक संस्थाएँ चलायी जायेंगी, तो वे युद्ध-स्थल बन कर समाज के लिए विनाशकारी केन्द्र प्रमाणित होंगी तथा उनके कार्यकर्ताओं के संसर्ग में आने वाले लोगों को हानि भी उठानी पड़ेगी। कालान्तर में दुर्व्यवस्थित संस्थाओं तथा आश्रमों के कारण लोग ईश्वर तथा धर्म में विश्वास खो बैठते हैं तथा सभी महात्माओं को ठग समझने लगते हैं। कभी-कभी स्वार्थी लोग आध्यात्मिक संस्थाओं को व्यवसाय के लिए चलाते हैं। वे लोगों का अनुचित मार्ग-दर्शन करते हैं।

आत्मसाक्षात्कार-प्राप्त व्यक्ति द्वारा चलाया गया आश्रम भी प्रारम्भ में अति-उन्नत उद्देश्य एवं लक्ष्य रखते हुए भी कालान्तर में अर्थोपार्जन-वृत्ति के आते ही कलुषित हो जाता है। संस्थापकों में मानव जाति की सेवा के लिए असाधारण क्षमता होनी चाहिए। तभी वास्तविक सेवा निरन्तर की जा सकती है। गृहस्थों में अभिरुचि एवं श्रद्धा की कमी होने पर कोई भी व्यवस्थित कार्य करना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त योग्य तथा भक्ति से विभूषित साधक प्राप्त करना अत्यन्त ही कठिन है। आजकल साधक निष्काम सेवा के महत्त्व को नहीं समझते। बहुत से आश्रम योग्य कार्यकर्ताओं की कमी के कारण अभावग्रस्त हैं।

आश्रम स्वतः बढ़ चला

मैंने कभी आश्रम चलाने की बात नहीं सोची थी। जब बहुत से विद्यार्थी तथा भक्त आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन हेतु आने लगे, तब उनकी सहायता करने के लिए तथा उन्हें संसार के लिए उपयोगी बनाने हेतु मैंने उनकी प्रगति तथा जन-कल्याण के लिए कुछ कार्य-क्षेत्रों का निर्माण किया। मैंने उन्हें अध्ययन तथा साधना के लिए प्रोत्साहित किया तथा उनके भोजन एवं आवास के लिए उचित प्रबन्ध कर दिया। मुझे अपने भक्तों से जो रुपये अपने वैयक्तिक कार्यों के लिए मिलते थे, उनका इस कार्य में उपयोग कर लिया। इस प्रकार कालान्तर में मैंने अपने चारों ओर एक विशाल आश्रम तथा आदर्श संस्था को प्रकट होते देखा। साधना के अनुकूल वातावरण से युक्त आध्यात्मिक केन्द्र शिवानन्दनगर की स्थापना हो गयी।

मेरे पास बड़ी योजनाएँ नहीं थीं। मैंने किसी महाराजा या सेठ से रुपयों की याचना नहीं की। लोगों को सही दिशा में होने वाली यहाँ की सेवा अच्छी लगी। ईश्वरीय प्रेरणा से कुछ सहायता प्राप्त हो गयी। मैंने जगत् के अधिकाधिक आध्यात्मिक कल्याण के लिए उनके पैसे-पैसे का उपयोग किया। प्रतिवर्ष नये-नये भवन तैयार होने लगे; फिर भी आश्रम वासियों तथा दर्शनार्थियों के प्रवाह के लिए समुचित व्यवस्था का अभाव ही रहता है। प्रत्येक स्तर पर कार्य का सुन्दर विकास हुआ। कई बार भक्तों ने मुझे प्रचारार्थ भ्रमण के लिए बाध्य किया, जिससे धन एकत्र हो सके। यह मेरे लिए असम्भव था। मैंने देने तथा सबकी सेवा में ही आनन्द लेता हूँ। १९४० में पंजाब की विस्तृत यात्रा के लिए सुन्दर प्रबन्ध किया गया। मैंने तुरन्त ही तार भेज कर उस कार्यक्रम को रद्द कर दिया। उस तार-सन्देश से आपको पता चल जायेगा कि मैं किस भाव से आश्रम की देख-रेख करता हूँ :

"मुझे चिन्ता नहीं कि दिव्य जीवन संघ की उन्नति होगी या नहीं। यदि ईश्वर की कृपा है और हम अपनी साधना तथा सेवा को उचित भाव तथा श्रद्धा के साथ चालू रखते हैं, तो ईश्वरीय स्रोत से सहायता मिलेगी ही। मैं गंगा

के तट पर अपने छोटे-से कुटीर में रह कर ही जितना सम्भव होगा करता रहूँगा। यदि मधु है, तो मधुमक्खियाँ स्वतः ही आ जायेंगी। धन की कामना को पूर्णतः त्याग दीजिए।"

कुछ ही काल में काम बढ़ चला। आजकल योग, भक्ति, वेदान्त तथा स्वास्थ्य के नियमित वर्ग चल रहे हैं। तीन सौ से अधिक साधक मेरे साथ रहते हैं, जिन्हें सब प्रकार के आराम तथा सुविधाएँ प्राप्त हैं। वे विभिन्न प्रकार से संसार की सेवा कर रहे हैं। ईश्वर की जय हो! ये साधक धन्य हैं। विभिन्न मतों एवं धर्मों के अनुयायी विभिन्न देशों से आ कर मेरे पास कई सप्ताहों तथा महीनों तक रहते हैं। भारत के सभी भागों से भक्त जन आश्रम में आ कर सामूहिक साधना एवं सत्संग में भाग लेते हैं।

जहाँ सभी का स्वागत होता है

उत्तम साधकों के लिए धर्मशास्त्रों में साधन-चतुष्टय-विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से सम्पन्न होना आवश्यक बताया है। कुछ कट्टर सम्प्रदायों में जातिगत बन्धन हैं तथा वे साधकों के लिए चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और तब संन्यास क्रमिक रूप से प्राप्त करने पर बल देते हैं। जब साधक मेरे पास आते हैं, तब मैं उनसे उनके अध्ययन, पद, कुल, जाति तथा क्षमता के विषय में कुछ नहीं पूछता। मैं चोर तथा दुष्ट जनों का भी स्वागत करता हूँ एवं अल्पायु व्यक्तियों, रोगियों तथा वृद्धों को भी स्थान देता हूँ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे सभी साधुओं तथा ज्ञानियों की संगति तथा आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त वातावरण में रह कर प्रखर योगी बन जायेंगे।

पूर्ण स्वतन्त्रता

आश्रम के आध्यात्मिक स्पन्दन योग-मार्ग में लोगों को ढालने में अत्यन्त प्रभावशाली हैं। सहस्रों ने इसका अनुभव किया है। जो साधक आश्रम में रहने के इच्छुक हैं, उन पर मैं नियमों के प्रतिबन्ध नहीं रखता। लोग कितनी भी संख्या में यहाँ आ कर चाहे जब तक ठहर सकते हैं तथा जब इच्छा हो, तब आश्रम छोड़ कर जा सकते हैं। मैं उनसे कोई काम, सेवा तथा सहायता की माँग नहीं करता। मैं उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार स्वाध्याय तथा साधना करने देता हूँ, साथ ही यथासम्भव उन्हें सहायता भी देता हूँ।

जिन साधकों में अधिक भक्ति है, जो अपनी उन्नति के लिए निष्काम सेवा के महत्त्व को जानते हैं, वे अपना सारा समय उपयोगी कार्यों में व्यतीत करते हैं तथा संस्था के कार्यों को भी सुचारु रूप से चलाते हैं। यह उनके लिए योग है। वे सभी योग-भ्रष्ट हैं और इस जगत् के लिए सजीव उदाहरण तथा आदर्श हैं। हजारों साधक आश्रम में आ चुके हैं। उचित शिक्षा प्राप्त करके सैकड़ों साधक या तो उग्र साधना के लिए एकान्त-वास में चले गये अथवा सेवा-योग के लिए नगरों में। फिर भी आश्रम सदा भरा हुआ रहता है और प्रतिदिन कम-से-कम एक दर्जन उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आश्रम में निवास के लिए आज्ञा माँगते रहते हैं। सत्संग में भाग लेने तथा गंगा में स्नान करने से साधकों को रहस्यमयी सहायता प्राप्त होती है। किसी काम के बहाने वे मेरे निकट-सम्पर्क में आते हैं और अल्प काल में ही बहुत कुछ सीख जाते हैं। वे अनायास ही शीघ्र सभी दिव्य सद्गुणों का विकास कर लेते हैं तथा महान् योगी बन जाते हैं।

चमत्कारों का चमत्कार

उपर्युक्त परिस्थितियों में आदर्श आश्रम को चलाना कैसे सम्भव है? यह अधिकांश लोगों के लिए समस्या है। संसार के लिए यह चमत्कार ही प्रतीत होता है। यदि आश्रम के सचिव तथा व्यवस्थापक एक लाख रुपये के कर्ज का बिल ले कर भी मेरे पास आने लगें, तो मुझे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं होती । लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती, जब मैं इन ऋणों के होते हुए भी अकादमी मुद्रणालय के लिए स्वतःछपाई के यन्त्र, स्टूडियो के लिए नवीनतम ऊँचे दर्जे का कैमरा, विस्तारक तथा प्रक्षेपक-यन्त्र या बड़े सभा-भवनों, मन्दिर तथा घाट के निर्माण के लिए अनुमति देता हूँ। लोग शिकायत करते हैं कि यहाँ उन्हें उचित से अधिक भोजन तथा सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं। आश्रमवासी बहुत सुखी तथा सम्पन्न अनुभव करते हैं। कुछ साधारण ग्रामीण जैसे मालूम होंगे, कुछ को ऊँची शिक्षा नहीं मिली होगी; परन्तु मैं पाता हूँ कि जो भी आश्रम में रहता है, वह महान् सन्त है, जिसमें आश्चर्यजनक क्षमताएँ तथा योग्यताएँ छिपी हुई हैं। ख्याति प्राप्त व्यक्ति, जो आश्रम देखने के लिए आते हैं, आश्रमवासियों के विकास को देख कर दंग रह जाते हैं, उनकी क्षमताओं की सराहना करते हैं और पूछते हैं-"पूज्य स्वामी जी महाराज, आपको इतने प्रतिभाशाली योग्य व्यक्ति कैसे मिल जाते हैं?"

मैंने किसी भी आश्रमवासी को आश्रम से निकल जाने के लिए नहीं कहा, न किसी के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग किया और न किसी के प्रति कुभावना ही रखी। जब किसी साधक के प्रति कोई गम्भीर शिकायत मिलती है, जब साधक आश्रम की शान्ति में बाधा डालता है तथा इसकी व्यवस्था में विघ्न डालता है, तब मैं उसे बाहर कहीं स्वतन्त्र रूप से रहने के लिए आदेश देता हूँ। मैं खर्चे के लिए पर्याप्त रुपये भी देता हूँ तथा भक्तों से सहायता-प्राप्ति के लिए परिचय-पत्र भी दे देता हूँ। जाते समय आध्यात्मिक सलाह देता हूँ तथा उसके कल्याण एवं उद्बोधन के लिए प्रार्थना करण हूँ। कुछ दिनों या सप्ताहों में वह इस आश्रम को ही अपना घर-सा जानने लगता है तथा परिवर्तित हृदय एवं दृष्टिकोण के साथ यहाँ लौट आता है। मैं उसका हृदय है स्वागत करता हूँ। मैं भूत को तुरन्त भूल जाता हूँ। मेरे स्वभाव में प्रतिशोध का नहीं है। मैं व्यर्थ के निराशावादी व्यक्तियों तथा ऐसे लोगों को भी आश्रम में ठहरने की अनुमति देता हूँ, जो मेरी एवं व्यवस्थापन की भी समालोचना करते रहते हैं। कुछ काल में उनमें चमत्कारी परिवर्तन हो जाता है। मैं उनके चेहरों में सुख तथा आनन्द देखता हूँ।

साधकों की देख-रेख कैसे करनी चाहिए?

योग के सभी साधकों के प्रति मुझमें असीम स्वतःप्रेरित उदारता, प्रेम तथा सहानुभूति है; चाहे वे साधक किसी भी जाति, लिंग या योग्यता के क्यों न हों। जो जप अथवा थोड़ा ध्यान करते हैं अथवा समाज, रोगी या निर्धनों की किसी तरह की सेवा करते हैं, उनसे मैं बड़ा ही प्रसन्न रहता हूँ। मैं सभी प्रकार के लोगों को साधना अथवा कर्मयोग द्वारा अपने विकास के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करता हूँ। मैं वृद्ध जन, युवक, साधक तथा असहाय रोगी व्यक्तियों पर विशेष ध्यान देता हूँ। मैं मिठाइयों तथा फलों को सर्वप्रथम उनमें बाँट कर फिर स्वयं थोड़ा-सा लेता हूँ।

मुझे याद है कि किस तरह मैं स्वर्गाश्रम में बूढ़े साधुओं के लिए दूध तथा दही ले जाया करता था, उनके बीमार पड़ने पर पैर दबाता तथा उन्हें दवा देता था। अभी भी मैं अपने भोजन के एक भाग को कुछ संन्यासी साधकों तथा आश्रम के दर्शनार्थियों को भेजा करता हूँ। कुछ सालों तक मैं स्वयं अपने भोजन का एक भाग कुछ ऐसे साधकों के पास ले जाया करता था, जो कठोर परिश्रम करते थे तथा साधारण भोजन लेते थे और जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। बाद में सब प्रकार से काम बढ़ चलने पर मैंने अपने साथ दो युवक ब्रह्मचारी रख लिये, जो सभी आश्रमवासियों में फल तथा बिस्कुट बाँटते हैं। मैं सांसारिक व्यक्तियों के समान तेजी से कमरों में फेंक कर दान नहीं देता। मुझमें यह भाव था कि मैं उस रूप में ईश्वर की सेवा कर रहा हूँ। मैं पहले साष्टांग प्रणाम करता और तब उन्हें पूजा चढ़ाता हूँ।

आश्रम से बाहर रहने वाले साधकों के पास रुपये, पुस्तकें या खाने की सामग्री भेजते समय में सदा लिखता हूँ- "कृपया इसको ग्रहण करें।" आध्यात्मिक प्रगति के लिए भाव तथा आन्तरिक प्रवृत्ति अधिक आवश्यक हैं। ये मुझे स्वभावतः ही प्राप्त हुए थे। इनके लिए मुझे प्रयास नहीं करना पड़ा। मैं अभिमानी व्यक्तियों की तरह नाम तथा यश के लिए सेवा नहीं करता। निर्धन रोगी तथा असहायों की नम्रतापूर्वक सेवा करने का एक सद्गुण ही मेरा मुख्य योग है। यह एक गुण ही सभी ईश्वरीय सद्गुणों के विकास तथा सभी नाम-रूपों के पीछे भगवद्-दर्शन करने में मेरा सहायक बना।

सभी के लिए सहायता तथा प्रेम

प्रारब्ध अथवा मन के विक्षेप के कारण विषय-वस्तुओं की तृष्णा, आराम अथवा विभिन्न स्थानों को देखने के कुतूहल से लोग आश्रम से बाहर जाना चाहते हैं। कुछ उन्नत साधक कुछ वर्ष तक आश्रम में रह कर हिमालय के आन्तरिक भागों में ध्यान के अनुभव प्राप्त करने के लिए जाते हैं। मैं उन्हें उत्साहित करता हूँ तथा सभी प्रकार की सुविधाएँ देता हूँ। वे भोजन के लिए भिक्षा पर निर्भर करते हैं; पर मैं भी उनके लिए पर्याप्त रुपये भेज देता हूँ, जिससे वे दूध एवं फल का प्रबन्ध कर सकें। कुछ साधक मानव-जाति की सेवा के लिए उत्सुक हो भाषण देने के लिए यात्रा में निकल पड़ते हैं। मैं आध्यात्मिक सम्मेलनों का आयोजन करता हूँ तथा ऐसे साधकों को विभिन्न केन्द्रों में भेज देता हूँ।

कई वर्ष पहले कुछ साधकों ने, जिनकी इन्द्रियाँ तथा तृष्णाएँ बलवती थीं, मेरी आलोचना hat h_{i} वे आश्रम तथा समस्त हिमालय को क्रोध में भर कर गाली दे कर चले गये। मैंने उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उनके ज्ञान, सम्मति, समुचित तथा आन्तरिक आध्यात्मिक बल के लिए प्रार्थना की; परन्तु वे सभी हृदय का पूर्ण परिवर्तन कर पुनः आश्रम में लौट आते हैं। मैं बड़े प्रेम के साथ उनका स्वागत करता हूँ। मैं शीघ्र बीती को भुला देता हूँ। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति सौ बार बाहर जा कर पुनः लौट सकता है।

मनुष्य के लिए मेरा प्रबल प्रेम है। बन्धन, नियम तथा जोर-जबरदस्ती से मनुष्य को ईश्वरत्व में परिणत नहीं किया जा सकता। उन सभी को निजी विश्वसनीय अनुभव होने चाहिए, जिससे ईश्वरत्व पर उनकी आस्था जम सके।

आश्रम में हर व्यक्ति पर किसी-न-किसी प्रमुख विभाग का दायित्व होता है। जब लोग अचानक चले जाते हैं, तब स्वाभाविक रूप से काम में विघ्न पड़ जाता है। नये व्यक्तियों के सँभालने पर बहुत-सी त्रुटियाँ होती हैं। काफी हानि भी पहुँचती है। मैं व्यक्ति की उन्नति, प्रगति, ज्ञान तथा शान्ति की परवाह करता हूँ; अतः जब वे बाहर जाना चाहते हैं, तब मैं उनके मार्ग में नहीं आता।

वैयक्तिक देख-रेख

कई वर्ष पूर्व मैंने अपने साधकों के पास जो पत्र भेजे थे, उनसे इस बात पर पर्याप्त प्रकाश मिलेगा कि मैं किस प्रकार अपने शिष्यों की देख-रेख करता हूँ :

(१) अमुक व्यक्ति सुन्दर प्रगति कर रहा है। वह आजकल रसोई का बड़ा आचार्य है। उसे कृपया उपनिषद्, एक कलम तथा मेरी पुस्तक वेदान्त-अभ्यास की एक प्रति मेरे हिसाब में से दे दें।

(२) कृपया श्री एस. आर. सी. पर ध्यान रखिए। उनका स्वास्थ्य पहले से ही ठीक नहीं है। अब और कुछ शिकायत हो गयी है। उनका आहार अल्प है। कृपया उनके लिए नमकीन बिस्कुट तथा फल का प्रबन्ध कीजिए। वे मिठाइयाँ पसन्द नहीं करते। आप सदा ईश्वर में निवास करें!

(३) जब कभी आपको रुपये की आवश्यकता हो, मुझे शीघ्र लिखें। तपस्या के नाम पर स्वास्थ्य न बिगाड़ए। आप जैसा चाहें, वैसा करें। किसी प्रकार समय का सदुपयोग करें। ईश्वर-आशीर्वाद प्राप्त हो !

(४) आपका स्वास्थ्य कैसा है? अपने सारे अनुभवों को लिख डालिए तथा अपने चौबीस घण्टों का विवरण दीजिए। प्रिय योगिराज ! आप कभी भी आश्रम लौट कर आ सकते हैं। यह आपका अपना आध्यात्मिक घर है। अबाध साधना तथा पूर्णता के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं :

(क) प्रार्थना के द्वारा सुन्दर स्वास्थ्य, विश्राम, शिथिलन, अनुकूल आहार तथा साधना ।

(ख) शान्त तथा शीतल स्थान जहाँ आध्यात्मिक स्पन्दन हों।

(ग) नियमित समयान्तराल से सरल भोजन ।

(घ) गुरु जनों की सहायता तथा योग के उन्नत साधक अथवा गुरु से पथ-प्रदर्शन ।

(ङ) आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सा की सुविधा ।

इनसे शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति होती है। बिना किसी चिन्ता अथवा बाधा के आप योगाभ्यास में उन्नति कर सकते हैं और आश्रम में आपको सारी सुविधाएँ प्राप्त हैं। क्या रेल के किराये के लिए रुपये भेज दूँ? नमस्कार ।

प्रोत्साहन तथा परामर्श

मैं सदा उन लोगों का कृतज्ञ हूँ जिन लोगों ने दिव्य जीवन के लिए सेवाएँ की हैं। मैं उनकी सेवाओं को बहुत महत्त्व देता हूँ तथा उनकी स्तुति करने में कभी नहीं थकता। मैं अपने साधकों की वैयक्तिक आवश्यकताओं की तथा उनके स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक प्रगति की देख-रेख करता हूँ। कुछ वर्ष पहले मैंने एक शिष्य को लिखा था :

(१) अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दीजिए। आप घास, पानी तथा वायु पर ही जीवित नहीं रह सकते। इस भ्रान्ति को तुरन्त त्याग दीजिए। पौष्टिक आहार तथा स्फूर्तिदायक फलों का सेवन कीजिए। शरीर को शिथिल छोड़ने का अभ्यास कीजिए। यह अति-आवश्यक है। द्रुतगति से दूर तक भ्रमण करने के लिए जाइए। मुद्रण के क्षेत्र में आपने इस वर्ष ठोस कार्य किया है। यह पर्याप्त है। यह सब ईश्वर का ही काम है। यह सब उसकी कृपा है। ऐसा अनुभव करें। क्या आप वहाँ आराम से हैं? क्या मैं आपके खर्चे के लिए रुपये भेज दूँ? ज्ञान-प्रचार के लिए व्यस्त जीवन में तथा एकान्त में उग्र साधना के लिए दूध तथा पौष्टिक आहार की आवश्यकता है।

(२) आपने तो चमत्कार कर दिखाया है। यह अत्युक्ति नहीं है। मैंने कभी भी आपसे इतनी आशा नहीं की थी। अत्यधिक काम न कीजिए। अपनी शक्ति को नियमित रखिए। थक जाने पर एकान्त में विश्राम कीजिए। एकादशी को विभिन्न केन्द्रों में कीर्तन कराइए। साप्ताहिक वर्ग लगाइए, चुपचाप व्यक्तिगत

कक्षाएँ भी लगाइए। इस प्रकार आप अधिक लोगों को प्रभावित कर सकेंगे। गृहस्थों के घर में कभी न सोइए। महिलाओं से सदा दूर रहिए। उनसे हँसी-ठिठोली न कीजिए।

(३) ऋषिकेश की ठण्ढ से आप डरिए नहीं। व्यर्थ ही भयभीत न होइए। आप मेरे कम्बल का प्रयोग कर सकते हैं। आप मेरे खाते से दूध या चाय दुकान से ले सकते हैं। ईश्वर करे, आप नित्य ब्रह्म की शान्ति का उपयोग करें।

(४) आराम कीजिए। कठोर श्रम न करें। शिर में ठण्ढा तेल लगाइए। प्रातः ठण्डे समय में प्राणायाम कीजिए। इससे आपको प्ररूर शक्ति प्राप्त होगी। फल भी लीजिए । प्रातः तथा सायं को ध्यान करना कभी न भूलिए। संन्यासी का लक्ष्य वेदान्त का साक्षात्कार 'अहं ब्रह्मास्मि' है। ब्रह्म-निष्ठा आपका आहार, पान तथा सब-कुछ है। कर्मयोग के अभ्यास के साथ-ही-साथ यह सब भी बनाये रखा जा सकता है।

मुझे संस्कृत भाषा के प्रति बहुत सम्मान है। मैं अपने शिष्यों को, जिनकी रुचि संस्कृत की ओर है, आश्रम के खर्चे से संस्कृत पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ। मैंने एक बार अपने एक शिष्य को लिखा था :

"यदि मेरे पास एक भूत हो अथवा एव वृक्ष हो, जिसमें रुपये के नोटों तथा सिक्कों के फल लगते, तो मैं अपने संस्कृत के छात्रों को बहुत आसानी से सन्तुष्ट कर पाता। उनकी आवश्यकताएँ अनन्त हैं। मुझे उनकी सहायता करके के लिए कुछ करना पड़ेगा। वे आश्चर्यकर अनुसन्धान-कार्य एवं गम्भीर अध्ययन कर रहे हैं। पुस्तकों का प्रबन्ध न होने पर उनके अध्ययन में बाधा पड़ेगी। मुझे एक संस्कृत कालेज स्थापित करने की कामना है, जिसमें अधिकाधिक संख्या में विद्यार्थी पढ़ें तथा संस्कृत-साहित्य में अनुसन्धान करने के लिए संन्यासी-छात्रों को पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त हों। हममें करुणा होनी चाहिए। अपनी आवश्यकताओं का उत्सर्ग करके भी हमें दूसरों की सेवा करनी चाहिए। यही मेरा जन्मजात स्वभाव है। यही सन्त का धर्म है।"

यथा-व्यवस्था का गुण

एक बार एक शिष्य किसी कारणवश आश्रम छोड़ कर चला गया। मैंने विचार किया कि उसके बहुमूल्य अनुभव तथा उसकी योग्यता से मानव-सेवा वंचित न रहे। अतः मैंने इस प्रकार पत्र लिखा :

"मैं आपके खर्चे के लिए रुपये भेज रहा था। 'स्थान छोड़ दिया', इस सूचना के साथ रुपये लौटा दिये गये। मैं सदा आपके चरणों की सेवा करने के लिए तैयार हूँ। आप स्वयं इनकार करते हैं। आप दूसरों पर क्यों निर्भर बनते हैं, जब मैं आपकी सेवा को तैयार हूँ। सांसारिक व्यक्तियों के साथ आप नगर में क्यों रहें? यहाँ कई विभाग हैं जिनमें आप धीरे-धीरे, बिना किसी के सम्पर्क में आये, स्वतन्त्रतापूर्वक मेरे साथ ही एकमात्र सम्बन्ध रख कर काम कर सकते हैं।

"सभी विभागों में उचित देख-रेख करने वाले व्यक्तियों के अभाव में काम की हानि होती है। यदि आप पत्र-व्यवहार-विभाग में भी थोड़ा कार्य करेंगे, तो इससे संसार की बड़ी सेवा हो जायेगी। आप मुझे सेकड़ों रूपों में सहायता कर सकते हैं। पहले के समान परिश्रम न कीजिए। बिना किसी उत्तरदायित्व के थोड़ा काम कीजिए। यही ईश्वर का आशीर्वाद तथा प्रसाद है। प्रचुर विश्राम कीजिए और थोड़ा-सा काम । आप आश्रम से दूर रह सकते हैं। आपका भोजन आपके कमरे में ही पहुँचा दिया जायेगा। मैं आपके व्यय हेतु रुपये दूँगा।

"यहाँ पर आपको भोजन की कमी नहीं है। मैं किसी को भोजन के लिए ना नहीं करता। फिर आप नगर में क्यों रहें? जब आप काम के सम्पर्क में न रहेंगे, तो शनैः-शनैः आपकी सारी क्षमताएँ लुप्त हो जायेंगी। सांसारिक वातावरण किसी भी दशा में आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयुक्त नहीं है; अतः आप शीघ्र ही ऋषिकेश चले आइए। क्या मैं रेल-किराये से लिए पैसे भेजूँ? यदि आपको पसन्द हो, तो आप छह महीने यहाँ तथा छह महीने शहरों में रह सकते हैं।

"यदि आप अपने दृष्टिकोण एवं विचारणा में थोड़ा-सा भी परिवर्तन ला देंगे, तो आप यहाँ तथा सर्वत्र सुखी रह सकते हैं। मनुष्य अपनी कल्पना तथा सोचने की पुरानी आदत के कारण ही दुःखी बना रहता है। वह स्वयं को परिवर्तित नहीं होने देता। यही माया है। अनुकूल बनिए । यथा-व्यवस्थित बनिए। सदा सुखी तथा प्रसन्न बनिए । शीघ्र प्रगति कीजिए। सक्रिय योगी बन कर समस्त संसार में ज्योति तथा ज्ञान का प्रसार कीजिए।

किसे आश्रम चलाना चाहिए?

विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए आश्रम महान् केन्द्र है। बहुत से उत्साही व्यक्ति सुन्दर विज्ञापन के साथ आश्रमों की स्थापना करते हैं। इतना ही पर्याप्त नहीं है। प्रारम्भिक साधकों के द्वारा नये आश्रमों की स्थापना से जगत् का कल्याण नहीं हो सकेगा । आश्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कुछ विशेष गुण होने चाहिए। नये साधकों के लिए तो यह बाधा सिद्ध होगा तथा उन्नत साधकों के लिए पतन का साधन । बहुत वर्ष पहले कुछ संन्यासियों ने आर्थिक सहायता तथा अपने आश्रम की गतिविधियाँ सुधारने के सम्बन्ध में मुझे लिखा था। एक व्यक्ति को मैंने जो उत्तर दिया था, उसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे आपको मेरे सब भाव तथा सिद्धान्त स्पष्ट हो जायेंगे:

"प्रिय स्वामी जी, आपके कार्य, महत्त्वाकांक्षाएँ, लक्ष्य तथा उद्देश्य प्रशंसनीय हैं। हे स्वामी जी, आश्रम अथवा धार्मिक संस्था की स्थापना करके गुरुपन, आराम तथा नाम व यश की कामना न करें। आश्रम चलाने वाले साधारणतः प्रारम्भ में तो नम्र रहते हैं तथा कुछ सेवा करते हैं; पर धन-सम्पन्न हो जाने पर वे जनता की सेवा तथा वैयक्तिक उन्नति की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। वे उद्दण्ड तथा स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। प्रलोभनों से आपको सदा सावधान रहना चाहिए। सदा विनम्र सेवक बने रहिए। आत्म-साक्षात्कार के पश्चात् भी अपनी दैनिक साधना को न त्यागिए।

"मैं किसी धनी या राजा या जमींदार को नहीं जानता। मेरे कोई शिष्य नहीं हैं। कुछ साधक जो कि वास्तव में आध्यात्मिक साधना करना चाहते हैं, वे ही मुझको अपना गुरु मानते हैं और मैं बड़ी सावधानी के साथ उनकी देख-रेख करता हूँ। बस, यही है। मैं आपको रुपये से सहायता नहीं कर सकता। मैं विविध प्रकार से संसार की सेवा कर रहा हूँ तथा सभी प्रकार के धर्मों तथा मठों के माध्यम से काम कर रहा हूँ।

"यदि आप निष्काम भाव से जनता की सेवा करेंगे, यदि जनता आपमें संन्यास-भाव को देखेगी, तो वह स्वतः ही हर प्रकार से आपकी सेवा के लिए तैयार हो जायेगी। रुपये के लिए आकाश-पाताल एक न कीजिए। अपने भाग्य को डरबी स्वीप से मत अजमाइए । साधुओं के लिए ऐसी योजनाएँ बनाना लज्जा की बात होगी।

"आजकल साधक अपनी आध्यात्मिक उन्नति की परवाह नहीं करते। वे शिर मुंडा कर कपड़े रंग कर कुछ समय तक ऋषिकेश में रहते हैं तथा अपने को महान् योगी कहने लग जाते हैं। वे विलासपूर्ण जीवन बिताने के लिए रुपये एकत्र करना आरम्भ कर देते हैं।

"भारत में पर्याप्त आश्रम तथा मठ हैं। सच्चे निष्काम सेवक बिरले ही होते हैं। आश्रम प्रारम्भ करने के पहले व्यक्ति का स्वयं का जीवन आदर्शमय होना चाहिए। उसके दर्शन मात्र से लोगों में शान्ति, शक्ति तथा सुख का संचार हो जाना चाहिए। तभी कोई मनुष्य सफलतापूर्वक आश्रम चला सकता है।"

आदर्शों को न भूलिए

"आश्रम चलाने के पहले निस्सन्देह आदर्श, महत्त्वाकांक्षाएँ तथा उद्देश्य महान्, आकर्षक तथा मोहक होते हैं। कुछ सम्पत्ति यथा यश के मिलते ही मनुष्य अपना आदर्श भूल जाता है। निष्काम सेवा की भावना तिरोहित हो जाती है। उद्देश्यों का त्याग कर दिया जाता है। संस्थापक कुछ चुने हुए शिष्यों तथा अनुयायियों के साथ आरामदेह जीवन व्यतीत करने लग जाता है। यदि यह भी मान लिया जाये कि संस्थापक गण आदर्श जीवन का त्याग नहीं करते, फिर उनके शिष्य बाद में उसी भाव से आदर्श जीवन नहीं रख पाते। वह संघर्ष तथा व्यापार का केन्द्र बन जाता है। आश्रम के प्रधान तथा सारे आश्रमवासियों को पूर्ण वैराग्यमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसे लोगों के द्वारा चलाये गये आश्रम नित्य सुख, शान्ति तथा आनन्द के केन्द्र हैं। वे सभी को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, संसार के लाखों व्यक्ति इनके द्वारा प्रेरणा ग्रहण करते हैं। संसार को सदा ऐसे आश्रमों की आवश्यकता है।

“हर संन्यासी, हर योग के साधक में कुछ-न-कुछ दोष तथा दुर्बलता होती है। केवल सिद्ध योगी ही सारे दुर्गुणों तथा दोषों से मुक्त होते हैं। सभी उन्नति के मार्ग में हैं। हर व्यक्ति कभी भूल कर सकता है। सहनशील बनिए। हर वस्तु में भलाई देखिए। मित्रों तथा काम करने वालों के साथ थोड़ा झगड़ा तों होता ही रहता है। कभी-कभी तो संन्यासियों के बीच भी झगड़ा हो जाता है। मनुष्य को दूसरे को क्षमा कर देना चाहिए। पुनः मिल कर भूत को भूल जाना चाहिए। आपको दूसरों में केवल शुभ ही देखने का स्वभाव होना चाहिए। साथ-ही-साथ इनका अपने नित्य के जीवन में अभ्यास करना चाहिए। कोई भी पूर्णतः बुरा नहीं है। इस बिन्दु को अच्छी तरह से स्मरण रखिए। दूसरों से मिलते समय आपके अन्दर मिलनसारिता होनी चाहिए। अपने आवेगों पर पूर्ण नियन्त्रण रखिए, तभी अधिकाधिक सेवक आपके साथ रहना चाहेंगे, तभी अधिकाधिक जन आपके साथ रहने में प्रसन्न होंगे और आश्रम की सेवा करेंगे। आपके द्वारा स्थापित पुण्य-कार्य प्रगतिशील हो! मैं सदा सहर्ष आपकी सहायता करूँगा।”

सप्तम अध्याय

संन्यास-मार्ग पर प्रकाश

संन्यास की महिमा

प्रत्येक धर्म में संन्यासियों का एक समुदाय रहता है जो एकान्त एवं ध्यान का जीवन व्यतीत करता है। बौद्ध धर्म में 'भिक्षु', मुसलमानों में 'फकीर', सूफियों में 'सूफी फकीर' तथा ईसाइयों में 'पादरी' हैं। धर्म की महिमा ही नष्ट हो जाये यदि ऐसे संन्यासी न रहें, जो वीतराग हो कर संसार की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करते हों। यही लोग विश्व के धर्मों को स्थिर रखते हैं। वे गृहस्थों को उनके दुःख एवं कष्टों में सान्त्वना देते हैं। वे शान्ति तथा ज्ञान के सन्देश वाहक हैं। वे रोगियों को रोग-मुक्त करते, निराश्रितों को आश्रय देते, असहायों को सहायता देते, निराशों में आशा लाते, असफलों को प्रसन्न बनाने, दुर्बलों में बल तथा अज्ञानियों में ज्ञान लाते हैं। एक ही सच्चा संन्यासी सारे जगत् की विचारधारा को बदल कर उन्नत बना सकता है।

वास्तविक संन्यासी इस विश्व की महान् शक्ति है। संन्यासियों ने प्राचीन काल में महान् कार्य कर दिखाया है। वर्तमान में भी वे आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं। एक सच्चा संन्यासी सारे जगत् के भाग्य को बदल सकता है। जब मैं किसी साधक को वास्तविक भक्ति, मुमुक्षुत्व, संन्यास-मार्ग की ओर प्रवृत्ति तथा संसार-जाल से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील देखता हूँ, तब मैं हर्ष से नाच उठता हूँ। प्रार्थना तथा विचार-प्रवाहों के द्वारा मैं ऐसे विद्यार्थियों के बिलकुल निकट-सम्पर्क में रहता हूँ तथा उन्हें बहुत सहायता देता हूँ। वे सभी मेरी ओर आकृष्ट हो कर स्वर्णिम भविष्य की आशा ले कर संसार का परित्याग कर देते हैं। मैं बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत करता हूँ तथा उन्हें योग-मार्ग में विविध प्रकार से प्रशिक्षण देता हूँ और जब तक कि वे अपने मार्ग में दृढ़ नहीं हो जाते, तब तक उनके प्रति बहुत सावधानी रखता हूँ।

संन्यास के लिए युवावस्था ही सर्वोत्तम है

धर्मग्रन्थों में संन्यास उन्हीं लोगों के लिए बतलाया गया है जो लोग ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रमों से गुजर चुके हैं। इसका तात्पर्य है कि लोग वृद्धावस्था में, मृत्यु के सन्निकट आने पर संन्यास ग्रहण करते थे। यह ठीक है कि मृत्यु के समय कुछ शान्ति मिल जाये, जिससे उन्हें शुभ जन्म मिल सकता है। अपने अनुभव से मुझे यह पता लगा कि ध्यान, स्पष्ट दृष्टि तथा शरीर, मन एवं हृदय की परिशुद्धि के लिए प्रबल शक्ति की आवश्यकता है। मैं मानसिक शुद्धि तथा प्रबल शक्ति से सम्पन्न युवावस्था को ही संन्यास-मार्ग के लिए सर्वप्रथम आवश्यकीय मानता हूँ। उन युवक ब्रह्मचारियों को देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है जिनके पास कोई सांसारिक बन्धन अथवा झंझट नहीं है। वे अच्छी तरह ढाले जा सकते हैं।

ग्रन्थों में साधकों के लिए विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व- साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होना प्रारम्भिक योग्यता बतलाया गया है। भारी दायित्वों से पूर्ण, चिन्ता तथा उलझनों से युक्त सांसारिक वातावरण में रह कर मनुष्य उपर्युक्त गुणों का विकास नहीं कर सकता। जब तक वह मन के एक दोष को दूर करने में सफल होता है, तब तक विभिन्न दिशाओं में उसको उलझना पड़ता है। प्रारम्भिक अवस्था में भौतिक जगत् के स्पन्दन

आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल नहीं होते। उन्हें अपनी सारी शक्ति प्रलोभनों के दमन करने में ही व्यय करनी पड़ती है। यही कारण है कि मैं युवकों को संन्यास के लिए अधिक पसन्द करता हूँ। अनुकूल वातावरण में, योगियों की संगति में, प्रलोभनों तथा विषयाकर्षणों से दूर पवित्र स्थान में योग-मार्ग का अवलम्बन करने पर सारे गुण उनमें स्वतः ही आ जायेंगे।

संन्यास के लिए कठोर शर्तें नहीं हैं

मैं सभी प्रकार के लोगों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। वृद्ध जन पावनी गंगा में स्नान करें, अपना सारा समय प्रार्थना एवं ध्यान में लगायें तथा सत्संग का लाभ लें। युवक जन सक्रिय कर्मयोग के द्वारा शीघ्र उन्नति कर सकेंगे तथा संसार को भी आध्यात्मिक लाभ प्रदान करेंगे। यदि कोई व्यक्ति विषय-भोगों के प्रति थोड़ा भी वैराग्य तथा योग-मार्ग में रुचि दिखाये, तो मैं तुरन्त ही संन्यास दे देता हूँ और अनुभवों के द्वारा उसे बड़ी सीमा तक प्रोत्साहित करता हूँ।

बहुतों के लिए यह बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि मैं पत्र के द्वारा भी संन्यास दिया करता हूँ। कुछ साधकों ने, जो हिमालय में आने में समर्थ नहीं हैं, डाक के द्वारा पवित्र वस्त्र तथा मन्त्रोपदेश को प्राप्त कर संन्यास ग्रहण किया है। मैं उनके आनन्द का सम्यक् वर्णन नहीं कर सकता। उनकी आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। मैं सावधानीपूर्वक उनका निरीक्षण करता हूँ।.

भक्तों से जो कुछ भी मैं स्वयं के लिए स्वतः प्रेरित धर्म-दान प्राप्त करता हूँ, उसे साधकों के कल्याण तथा शान्ति के लिए और उनकी उन्नति के साधन-रूप बहुत से कार्य-क्षेत्रों को तैयार करने में खर्च कर डालता हूँ। मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान के लिए मैं विवाहित मनुष्यों को भी संन्यास में आने देता हूँ। वे संन्यासियों के समान रहते हैं। बहुतों ने, जिनके स्त्री-बच्चे हैं, संन्यास ग्रहण किया है। कुछ दिनों तक यहाँ शिक्षा प्राप्त कर वे वापस लौट जाते हैं। वे अपने परिवार के निकट अथवा दूर रह कर पूर्ण अनासक्तिपूर्वक परिवार की देख-रेख करते तथा अपनी साधना में प्रचुर उन्नति करते हैं।

मैं साधक की प्रवृत्ति तथा आन्तरिक शुद्धि पर ध्यान देता हूँ। मैं भोजन एवं वत्र-सम्बन्धी अत्यधिक नियम एवं बन्धन उन पर नहीं डालता। बाह्य नियमों का पालन उतना महत्त्व नहीं रखता। मेरे साधक कहीं भी, किसी भी स्थान में, किसी भी वस्त्र में रह कर मेरे उपदेशों का भली प्रकार पालन कर सकते हैं। वे सभी सारे संसार के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उस सच्चे एवं आदर्श संन्यासी जी जय हो, जो आदर्श जीवन बिताता है! इस संसार को ऐसे आदर्श संन्यासियों की आवश्यकता है, जो ईश्वरीय चेतना के साथ देश तथा मानवता की सेवा कर सकें और साधुओं एवं सन्तों के सन्देश, सच्चे ज्ञान को घर-घर पहुँचा सकें। संन्यासी जो दिव्य ज्ञान के भण्डार हैं, जो सत्य के आलोक-स्तम्भ तथा विश्व के पथ-प्रदर्शक हैं, जो आध्यात्मिक प्रासादों की आधार-शिला तथा नित्य सनातन धर्म के केन्द्रीभूत स्तम्भ हैं, सदा विश्व की सारी जातियों का मार्ग-दर्शन करते रहें!

कौन मेरा शिष्य बनने योग्य है

यद्यपि मैं अपने शिष्यों को पोशाक तथा बाहरी रूपों में अत्यन्त स्वतन्त्रता देता हूँ, फिर भी आवश्यक मामलों में मैं बहुत ही उग्र हूँ। उन्हें संन्यासियों के लिए निर्धारित नियमों का पालन करना ही होगा, तभी वे आदर्श संन्यासी बन कर चमकेंगे। विलासपूर्ण संन्यासी बहुत ही भयावह हैं। उन्हें मन को ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। फैशन-प्रिय स्वेच्छाचारी संन्यासी समाज के लिए हानिकारक हैं। संसार के लोग ऐसे संन्यासियों को श्राप देते तथा

उनके प्रति अनादर एवं घृणा प्रदर्शित करते हैं। वे कितने भी उन्नत क्यों न हों, फिर भी स्त्री अथवा गृहस्थियों के साथ न रहें तथा स्वतन्त्र रूप से सभी से न मिलें। सरल जीवन तथा उच्च विचार के साथ ज्वलन्त वैराग्य ही उनके जीवन के क्षण-क्षण का आदर्श होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि संन्यास मानसिक ही है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आप जैसा चाहें, वैसा करने लगें। इससे आपका पतन हो जायेगा। मन तथा इन्द्रियों के दमन के लिए परम्परागत नियमों का पालन करते हुए पूर्णता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनिए। यदि आपमें सच्चा वैराग्य तथा निरासक्ति है, तो भोजन तथा वस्त्र में अनुशासन स्वतः ही व्यक्त होने लगेगा। बाह्य नियमों के पालन से आपको मार्ग पर स्थिर रहने में सहायता मिलेगी। माया बहुत उपद्रव मचाती है। माया भ्रम में डालती है। सावधान रहें! हर कदम पर सतर्क रहिए तथा मन की वृत्तियों का निरीक्षण करते रहिए।

मेरे शिष्यों में बड़प्पन का भाव नहीं होना चाहिए। वे शुष्क दार्शनिक नहीं हैं जो सारा समय एवं शक्ति प्रचार में ही खो डालते हैं। उनमें आत्म-त्याग है और वे अपनी मूक एवं उग्र साधना के द्वारा संसार की सेवा करते हैं। उग्र सेवा में संलग्न रहते हुए भी वे मन को लक्ष्य पर लगाये रहते हैं। वे इस आस्था में दृढ़ हैं कि 'यह जगत् दीर्घ स्वप्न तथा नश्वर है। सत्य ही एकमेव यथार्थ है।' मेरे साधकों के लिए जगत् है ही नहीं। वे सभी नाम-रूपों में ईश्वर को ही देखते हैं।

आन्तरिक स्वभाव को शुद्ध बनायें

अपने मन को शुद्ध बनायें। शिष्टता, साहस, उदारता, प्रेम, आर्जव, सत्य आदि सात्त्विक गुणों का विकास करें। काम, क्रोध, मोह, राग-द्वेष तथा अन्य सभी दुर्गुणों का दमन करें जो नैतिक पूर्णता तथा आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में बाधक हैं। नैतिक पूर्णता आत्म-साक्षात्कार के लिए पूर्वापेक्ष्य है। यदि साधक साधना के इस पक्ष पर ध्यान नहीं देता, तो कितना भी अभ्यास उसके लिए लाभकर सिद्ध नहीं होगा। सभी से प्रेम करें। सभी को साष्टांग नमस्कार करें। नम्र बनें। प्रिय, मधुर तथा चित्ताकर्षक शब्द बोलें। स्वार्थ, मद, अहंकार तथा दम्भ का परित्याग करें। अपनी निम्न प्रकृति को परिशुद्ध बनायें।

आत्म-विश्लेषण के द्वारा यह पता लगा लें कि आपमें मुक्ति-प्राप्ति की सच्ची कामना है अथवा केवल उन्नत वस्तुओं के विषय में जानने का कुतूहल है अथवा आध्यात्मिक सिद्धि दिखा कर रुपये एवं यश कमाने की भूख है। उन्नत पुरुषों की संगति एवं आध्यात्मिक वातावरण में रहने से आपमें सारे गुण स्वतः आ जायेंगे।

स्त्रियों के प्रति भाव

सभी स्त्रियों को मेरे मूक नमस्कार तथा प्रणाम प्राप्त हों जो माता, शक्ति अथवा काली की अभिव्यक्ति हैं। वे समाज की रीढ़ तथा धर्म की पालिका हैं। उनमें विशेष धार्मिक प्रवृत्ति है। उनमें स्वाभाविक दिव्य गुणों का वास है। प्राचीन काल में हिन्दू-महिलाएँ भी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर ऋषियों की सेवा करतीं तथा आत्मा पर ध्यान लगा कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करती थीं। स्त्रियों में बहुत-सी सिद्ध, वैरागी, भक्त तथा योगी बन चुकी हैं। अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलने पर वे अपनी शुद्धि तथा सिद्धि के द्वारा बहुत से चमत्कार कर सकती थीं। ऐसे उदाहरण हैं कि वे मृत को जीवित बना डालतीं, उदय होते हुए सूर्य को रोक देतीं तथा तत्त्वों पर शासन करती थीं। आज भी आप ऋषिकेश, हरिद्वार, वृन्दावन, वाराणसी तथा भारत के अन्य तीर्थ-स्थानों में बहुत-सी स्त्रियों को देखेंगे, जिन्होंने संसार को त्याग कर योग-मार्ग को ग्रहण किया है।

मैं किसी से घृणा नहीं करता। मैं स्त्री को अपनी आत्मा के समान ही सम्मान देता हूँ। मैं स्त्रियों में माता दुर्गा के दर्शन करता हूँ। स्त्रियाँ इस जगत् में प्रबल शक्तियाँ हैं। उनके ही सदाचार से इस जगत् में धर्म की संस्थापना है। कामुक युवकों के लिए मैंने स्त्रियों के नश्वर शरीर के प्रति बहुत लेख लिखे हैं। उनमें वैराग्य बढ़ाने तथा मन एवं इन्द्रियों को वशीभूत करने में सहायता देने के लिए ही ऐसा किया गया है। यद्यपि लोगों में वैराग्य की वृद्धि के लिए मैंने स्त्रियों का ऋणात्मक वर्णन किया है, फिर भी मेरा उनके प्रति बड़ा सम्मान है। मैं उनकी सेवा करता हूँ। मैंने पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के बहुत से स्थानों में उनके साथ कीर्तन किया है। बहुत-सी स्त्रियाँ, दो या तीन दिनों की छुट्टी मिलने पर भी, दिल्ली तथा अन्य स्थानों से आश्रम में आ जाया करती हैं। वे समूह के साथ आती हैं तथा दैनिक सत्संग में भाग ले कर अत्यन्त शान्ति एवं आनन्द-लाभ करती हैं। वे आश्रम में कई दिनों तथा सप्ताहों तक ठहरती हैं।

क्या स्त्रियों को संन्यास लेना चाहिए?

युवती स्त्रियों के लिए संन्यास-मार्ग का अनुसरण करना निःसन्देह कठिन है। उन्हें पुरुषों के समान स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। पुरुष कहीं भी जा सकते हैं, कहीं भी सो सकते हैं। वे घर-घर से भिक्षा माँग कर अपना पालन कर सकते हैं; परन्तु स्त्रियों को बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। खेद की बात है कि भारत में केवल स्त्रियों के लिए आदर्श संस्थाएँ भी अधिक नहीं हैं, जहाँ वे शान्तिपूर्वक रह कर संसार की सेवा के द्वारा उन्नति कर सकें। आज आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली स्त्रियों के लिए ऐसी आदर्श संस्थाओं की आवश्यकता है जहाँ सब प्रकार के साधन उपलब्ध हों।

कुछ सभ्य महिलाएँ पत्र-व्यवहार के द्वारा मुझसे संन्यास-दीक्षा की याचना करती हैं। सन् १९३६ में मैंने एक ऐसी महिला को अपने उपयोगी सुझावों-सहित निम्नांकित उत्तर दिया था :

"मैं पूर्ण विश्वास के साथ किसी ऐसे आश्रम को नहीं बता सकता जहाँ आप शान्तिपूर्वक रह कर उन्नति कर सकें। आप अपने माता-पिता से कुछ निश्चित धन ले कर बैंक में जमा कर दीजिए। उस धन के ब्याज से सरल जीवन व्यतीत कीजिए। यही सर्वोत्तम मार्ग है। फिर भी एक ऐसे आश्रम में रहिए जहाँ उन्नत आत्माएँ, सन्त रहते हों अथवा धार्मिक प्रवृत्ति वाली प्रौढ़ महिलाओं के साथ रहिए। अपना सारा समय उपनिषद् और गीता के स्वाध्याय तथा साधना में बिताइए। कीर्तन तथा भजन में विशेष ध्यान दीजिए। आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करने पर आप गाँव-गाँव में जा कर लोगों में भक्ति-भावना भर सकती हैं। यदि ऐसा करेंगी, तो संसार आपकी पूजा करेगा। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो अपने भाई से आप मासिक खर्चा मँगायेंगी, इससे आपमें परावलम्बन की प्रवृत्ति विकसित होगी। आप हर माह उनकी सहानुभूति की आशा रखेंगी। यह उचित नहीं है।

यदि आप संन्यास-मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध हैं और आपके पास जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी स्वतन्त्र साधन नहीं है, तो आप कुछ लड़कियों को पढ़ाइए । उनके माता-पिता आपका पालन करेंगे। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप किसी स्कूल में शिक्षिका अथवा नर्स बन जायें। यह सांसारिकता है। इसमें आपका पूरा समय लग जायेगा और आपको उग्र साधना के लिए समय तथा शक्ति नहीं मिल सकती। कालान्तर में संसार के प्रलोभन आपको प्रभावित करेंगे। वैराग्य धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेगा। आराम तथा विलास का प्रादुर्भाव होगा। आप लक्ष्य को भूत जायेंगी। यदि आप विलासी जीवन बिताने वाले सांसारिक लोगों से मिलती रहेंगी, तो आज के जैसा मन तथा भाव नहीं बनाये रख सकतीं। दृढ़ बनिए । कभी अपने संकल्प को न बदलिए। ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखिए।"

स्त्रियों की सेवा

सच्ची स्त्रियों की सेवा का कार्य मुझे हृदय से प्रिय है। मेरे पास रुपये नहीं हैं। मुझमें जनता से, राजा, जमींदार तथा व्यावसायिक व्यक्तियों से रुपये एकत्र करने की कला नहीं है। मैं सेवा के नाम पर कभी धन-संचय हेतु नहीं निकलता । समय-समय पर अपने भक्तों से कुछ रुपये प्राप्त करता हूँ। उस धर्म-दान को मैं अपने आस-पास रहने वाले या अपने निकट-सम्पर्क में रहने वाले साधकों की उन्नति के लिए लगा डालता हूँ। मेरी पुस्तकें विश्व के विभिन्न देशों में बड़ी संख्या में बिकती हैं; परन्तु मैं अपने प्रकाशनों से धन प्राप्त नहीं करता। मैं अपनी पुस्तकों को निःशुल्क ही बाँट दिया करता हूँ। मैं व्यापार नहीं जानता। महिलाओं के लिए संस्था स्थापित करने के लिए इस समय मेरे पास धन तथा साधन नहीं हैं।

कुछ पुराने विचार वाले लोग तथा संन्यासी कहते हैं कि स्त्रियाँ संन्यास-मार्ग के योग्य नहीं हैं। मेरा मत भिन्न है। वे भी योग तथा संन्यास के मार्ग पर चल सकती हैं। कई बार मैंने स्त्रियों के लिए अलग आश्रम चला कर मानव जाति की वास्तविक सेवा करने की सोची। मात्र स्त्रियों के लिए आदर्श संस्था के निर्माणार्थ लोगों की सहायता नहीं मिलने के कारण मैंने कई शिक्षित एवं सुसंस्कृत महिलाओं को इस आश्रम में रहने की अनुमति दी है। मैं स्वयं उनकी आवश्यकताओं की देख-रेख करता हूँ तथा उन्हें योग, भजन तथा कीर्तन आदि योग की सब शाखाओं में शिक्षित करता हूँ। बहुतों ने योगासन सीख कर अत्यधिक लाभ उठाया है।

उनमें बहुत-सी विदेशी महिलाएँ भी हैं। मैं उन्हें संन्यास-दीक्षा भी देता हूँ। आश्रम में कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर वे विभिन्न केन्द्रों में चली जाती हैं और साधना तथा जगत् की सेवा जारी रखती हैं। दिव्य जीवन संघ की शाखाओं में विश्व के सभी देशों में महिला-विभाग भी हैं, जिनमें स्त्रियों को केवल अपनी उन्नति के लिए ही नहीं बल्कि स्त्री-जाति की सेवा के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। आश्रम में रहने वाली सभी महिलाओं को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। उन्हें स्वतन्त्रता तथा सारे सुख-साधन प्राप्त हैं। स्त्रियों के रहने के लिए अलग आश्रम के अभाव में यह आश्रम उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए आदर्श केन्द्र बन गया है। ईश्वर सभी स्त्रियों को आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करे ! वे सभी शान्ति, दिव्य महिमा और परम सुख को प्राप्त करें!

जो संन्यास लेना चाहते हैं

जगत् के विभिन्न भागों से बहुत से सच्चे साधक संन्यास-दीक्षा के लिए मेरे पास आया करते तथा लिखा करते हैं। अपने अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जो लोग आवेगात्मक वैराग्य के कारण संसार का त्याग करते हैं, वे संन्यास की आन्तरिक चेतना को कायम रखने में असफल हो जाते हैं, फल-स्वरूप संसार को लौट जाते हैं अथवा संन्यासाश्रम के कलंक बन जाते हैं। जिनमें ज्वलन्त वैराग्य तथा मुमुक्षुत्व हैं, उनको मैं तुरन्त ही संन्यास दे देता हूँ। दूसरों को निम्नांकित सलाह देता हूँ, जिससे वे वैराग्य का विकास कर संन्यास के अधिकारी बन सकें :

सांसारिक महत्ता कुछ भी नहीं है। यह सब बच्चों का खेल है। आपको आध्यात्मिक क्षेत्र में महान् बनना होगा। संसार में रहें; परन्तु सांसारिक न बनें। केवल कालेज का अध्ययन आपको महान् नहीं बना सकता। संसार में रहते हुए भी आप भली प्रकार अपने को संन्यास-मार्ग के लिए तैयार करें। आपमें वैराग्य है; परन्तु इस मार्ग का अनुभव नहीं है। मैं सदा आपको संन्यास देने के लिए तैयार हूँ। कल्पना कीजिए कि यदि आप संन्यासी बन जायें और आपकी माता, स्त्री, बहन तथा बच्चे आपकी कुटिया के समक्ष आ कर रोना-पीटना शुरू कर दें, तो क्या उनका सामना करने की शक्ति आपके अन्दर है? अच्छी तरह से इस बिन्दु पर विचार करके फिर निश्चय कीजिए।

पहले आप मोह को दूर कीजिए। समय-समय पर बाहर जा कर एक या दो महीने के लिए अपने परिवार से दूर एकान्त-वास कीजिए। फिर अपने मन को देखिए कि वह आपके सम्बन्धियों, सम्पत्ति, जन्म-स्थान आदि की ओर जाता है या नहीं। अपनी मानसिक शक्ति की जाँच कीजिए।

केवल आवेग तथा उत्साह से ही संन्यास-मार्ग में काम नहीं चलेगा। संन्यास-मार्ग बहुत-सी कठिनाइयों से भरा हुआ है; परन्तु दृढ़ संकल्प तथा धैर्य ये युक्त व्यक्ति के लिए यह सुख एवं आनन्द से पूर्ण है। संन्यासी का जीवन इस संसार में सर्वोत्तम जीवन है। वास्तविक संन्यासी तीनों लोकों का सम्राट् है। आध्यात्मिक मार्ग का मुमुक्षु भी तीनों लोकों का सम्राट् है। साहस रखें। वीर बनें। इस संसार को केवल भ्रान्ति समझें। अपने वास्तविक सच्चिदानन्द-स्वरूप का साक्षात्कार करें।

एकान्त कमरे में एक मिनट के लिए शान्त बैठ जायें। विचार करें। चिन्तन करें, विश्लेषण करें। आत्मा में निवास करने की महिमा को समझें। अन्तर्निरीक्षण करके अपने दोषों एवं दुर्बलताओं को दूर करने के लिए प्रयत्नशील बनें। यही वास्तविक साधना है।

जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में एकान्त में रह कर उग्र साधना करें। महात्माओं, गरीबों तथा बीमारों की यथा-शक्ति सेवा करें। योग पर भाषण देने तथा बड़े-बड़े सम्मेलनों में सभापति बनने की कामना न करें। विश्व की यात्रा करने तथा जगद्‌गुरु बनने की कामना न रखें। ये सारी आशाएँ पतन का कारण बनेंगी। युवावस्था में उग्र साधना तथा गम्भीर अध्ययन करें। भूत तथा भविष्य को भूल जायें। ईसा ने कई वर्षों तक एकान्त-वास किया था। उन्होंने तीन वर्षों तक ही बाहर निकल कर जगत् को आध्यात्मिक शक्तियों तथा ज्ञान से परिप्लावित कर दिया। खाली कारतूसें चिड़ियों को नहीं मार सकतीं। जिस मनुष्य में भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास नहीं है, उसके शब्द खाली कारतूसों के समान हैं। उनका सांसारिक मनों के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रभावशाली व्यक्ति बनें। सत् संकल्प के द्वारा आप इस भौतिक जगत् में क्रान्ति कर सकते हैं। नाम, यश, आराम तथा सुविधाओं के प्रलोभन में न पड़ें। मेहनती जीवन व्यतीत करें।

सेवा तथा ध्यान का समन्वय रखें

जंगल तथा गुहा में रहते समय आपके लिए एक कठिनाई है। आप नये साधक हैं, अतः अपनी शक्ति को बचा कर रखना तथा दैनिक कार्यक्रम बना कर समय का सदुपयोग करना आपको मालूम नहीं है। आप यह भी नहीं जानते कि उदासी आने पर उसे कैसे दूर किया जाये? प्रारम्भिक साधक चौबीस घण्टे ध्यान नहीं लगा सकते। प्रारम्भ में उन्हें ध्यान के साथ-साथ हृदय-शुद्धि हेतु कार्य भी करना होगा। उन्हें ज्ञान और कर्म मिला लेने चाहिए। मैंने अपने जीवन में ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखा, जो सदा ध्यान में निमग्न रहता हो और सफलता प्राप्त करके उससे बाहर निकला हो। मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि नये साधक एकान्त में उन्नति नहीं कर सकते। वे तामसी बन जाते हैं और दीर्घ काल तक एकाकी जीवन से अपनी गुप्त क्षमताओं को खो बैठते हैं।

आर्थिक स्वतन्त्रता

मैंने संन्यासियों के जीवन का गम्भीर अध्ययन किया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि थोड़ा-सा धन साधक की साधना तथा उन्नति में सहायक होता है। आर्थिक स्वतन्त्रता मन में शान्ति लाती है तथा साधना-काल में बल प्रदान करती है। पतन तभी होता है, जब आप बैंक में धन-संचय करने लगें। फिर भी यदि आपमें दृढ़ तितिक्षा, धैर्य तथा सुन्दर स्वस्थ्य है, यदि आपमें उग्र तथा स्थिर वैराग्य हैं और यदि आप मानव-जाति की निष्काम सेवा के

लिए तैयार हैं, तो आपको रुपये की चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। आप इसी क्षण संसार का संन्यास कर सकते हैं। अपने बहुमूल्य जीवन को रुपये कमाने तथा अर्थ-संचय करने में गँवाना उचित नहीं। सच्चे साधकों के लिए सर्वत्र प्रचुरता है। शीघ्र ही जगत् का परित्याग कीजिए। भागिए, भागिए-सांसारिक मानस के व्यक्तियों की संगति से दूर भागिए ! नगरों के कोलाहल तथा जगत् के क्लेशों से दूर भागिए। शीघ्रता से ऋषिकेश जैसे एकान्त स्थान में चले जाइए। आप खतरे के कटिबन्ध से दूर रहेंगे।

अच्छे साधु सर्वत्र ही आदर पाते हैं। जो महात्माओं की पोशाक में भिखमंगे होते हैं, वही जनता के लिए कोढ़ हैं। जनता के लिए दृष्टिपात मात्र से महात्मा तथा भिखमंगों में भेद कर पाना आसान नहीं है; परन्तु सच्चे महात्मा को बोल-चाल तथा कर्मों से शीघ्र ही पहचान लिया जाता है। आजकल गृहस्थों में श्रद्धा कम हो चली है। बाधाओं को दूर करने के लिए मैं साधकों को अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए पर्याप्त रुपये रखने की सलाह देता हूँ। भिक्षा माँगने की वृत्ति न रखिए। यदि सम्भव हो, तो आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रबन्ध कीजिए अथवा किसी आश्रम या धार्मिक संस्था में सम्मिलित हो जाइए।

सेवा का महत्त्व

दूषित प्रकृति तथा सांसारिक संस्कारों को दूर करने के लिए मैं साधकों को कुछ महीनों या वर्षों के लिए सक्रिय सेवा-कार्य में निमग्न रहने का निर्देश देता हूँ। इससे वे भूत को एकदम भूल कर अपने सारे समय तथा शक्ति को आध्यात्मिक खोज में लगाने में समर्थ होंगे। वे अपने शरीर तथा वातावरण को भूल जायेंगे । वे अपने मन को स्वतः ही सभी नाम-रूपों से परे सत्य को पहचानने के लिए योग्य बना लेते हैं। वे सभी सुखद तथा दुःखद परिस्थितियों में मन का समत्व बनाये रखते हैं। प्रगति तथा साधकों के विकास एवं स्थिति के अनुसार प्रशिक्षण की अवधि में भिन्नता रहती है।

मेरी प्रणाली के अनुसार हर साधक को भोजन बनाना, कपड़े धोना तथा साधुओं, महात्माओं और बीमारों की हर प्रकार से सेवा करना जानना चाहिए। उन्हें गम्भीर अध्ययन, ध्यान, जप तथा प्रार्थना में समय व्यतीत करना चाहिए। काम करते प्समय भी उन्हें मानसिक जप करना चाहिए। उन्हें विविध परिस्थितियों तथा व्यक्तियों के अनुकूल बनना चाहिए। उन्हें टाइप-राइटिंग तथा प्राथमिक चिकित्सा भी जाननी चाहिए। उन्हें भजन-कीर्तन भी सीखना चाहिए तथा योग एवं वेदान्त पर सुन्दर लेख लिखने चाहिए। मैं त्वरित आध्यात्मिक प्रगति के लिए साधना के सभी अंगों पर बल देता हूँ तथा उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ देता हूँ, जिससे वे साधनारत रह सकें। उनमें कुछ उन्नति होने पर मैं उन्हें ठण्ढे स्थानों में गम्भीर ध्यान के लिए भेज देता हूँ।

संन्यासी तथा राजनीति

आजकल राजनैतिक नेता गण संन्यासियों को भी आधुनिक राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने के लिए कहते हैं। इन नेताओं को शुद्ध निवृत्ति-मार्ग के महिमामय लक्ष्य का ज्ञान नहीं है। ये संन्यासी हिमालय की गुहाओं में भी रह कर अपने विचार-स्पन्दनों से जगत् को शुद्ध बना डालते हैं। वे संसार की अधिक भलाई करते हैं। मेरा क्षेत्र आध्यात्मिक मार्ग है। राजनैतिक तथा वैज्ञानिक लोग अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करें। यह हो सकता है कि आप राजनीति को धर्म से अलग न रख सकें; परन्तु भिन्न-भिन्न लोगों को अपनी क्षमता तथा रुचि के अनुसार विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में कार्य करना चाहिए। सभी अपने-अपने क्षेत्र में महान् तथा महत्त्वपूर्ण हैं।

क्या गुरु अनिवार्य है?

केवल सच्चे पिपासु आध्यात्मिक साधक ही मुझे जानते हैं। साधकों को आध्यात्मिक मार्ग में दुर्बलताओं एवं बाधाओं से घबराना नहीं चाहिए। उन आध्यात्मिक साधकों को सहायता देने के लिए सारा आध्यात्मिक जगत् तैयार है, जो अपने शिर को संसार-रूपी दलदल से ऊपर उठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। साधकों को जप तथा नियमित ध्यान के द्वारा अपने संस्कारों को दृढ़ बनाना चाहिए।

आज इस भौतिकवादी युग में भी भारतवर्ष ऐसे पिपासु साधकों से पूर्ण है, जो ईश्वर को ही चाहते हैं तथा उसके साक्षात्कार को अपने अस्तित्व का एकमेव लक्ष्य मानते हैं और उसके लिए अपने धन, परिवार, बच्चे आदि का पूर्णतः त्याग करने के लिए प्रस्तुत हैं। यह भूमि ऋषियों तथा सन्तों की भूमि है। संसार के सभी भागों से सत्य की खोज में रत सहस्रों साधक मेरे निकट-सम्पर्क में आते हैं। बहुत से विदेशी जन भारतवर्ष में योगियों एवं महात्माओं की खोज में आते हैं। भारतवर्ष तथा सारे भक्तों की जय हो!

आध्यात्मिक मार्ग बहुत-सी बाधाओं से भरा हुआ है। वह गुरु, जिसने स्वयं मार्ग का अनुगमन किया है, साधकों का पथ-प्रदर्शन कर सकता है तथा उनके मार्ग से सभी प्रकार की कठिनाइयों एवं बाधाओं को दूर कर सकता है। अतः एक वैयक्तिक गुरु की आवश्यकता है।

पुराने संस्कारों तथा पंकिल प्रकृति को दूर करने के लिए गुरु की सेवा तथा गुरु के व्यक्तिगत सम्पर्क में आना ही सर्वोत्तम मार्ग है। हाँ, गुरु यह नहीं बतला सकता कि ईश्वर या ब्रह्म यह है अथवा वह; परन्तु उसकी कृपा रहस्यमय ढंग से शिष्य को उसकी आभ्यन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति से अवगत कराती है।

दीक्षा से मन का रूपान्तर

दीक्षा केवल बाह्य परिवर्तन नहीं है। ब्रह्मविद्या के गुरु से दीक्षा लेने के उपरान्त साधक में मन का सच्चा परिवर्तन होता है तथा नवीन दृष्टि और सम्मति का जागरण होता है। बहुत से साधक अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार साधना का चुनाव कर लेते हैं। उन्हें यह पता नहीं होता कि इसका परिणाम क्या होगा। अनुचित आहार, बिना सम्यक् पथ-प्रदर्शन के ही गलत साधना, दुर्बल शरीर से कठोर तथा मूर्खतापूर्ण तपस्या, तपस्या के नाम से शरीर को कष्ट देना आदि से बहुत साधकों ने अपना सर्वनाश कर डाला है। अतः ऋतुओं के परिवर्तन, परिस्थिति तथा उन्नति के अनुसार समयोचित आदेश देने के लिए व्यक्तिगत गुरु की आवश्यकता है।

गुरु की कृपा आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि शिष्य चुप बैठा रहे। गुरु शंकाओं को दूर करेगा तथा साधकों को समुचित मार्ग दिखला कर उन्हें प्रोत्साहित करेगा । शेष कार्य तो साधकों को स्वयं करना है। ऐसा समझना तो महान् मूर्खता है कि महात्मा अथवा योगी के कमण्डलु के जल की एक बूँद से कोई मनुष्य सारी सिद्धि और साथ-साथ मुक्ति को भी प्राप्त कर ले। समाधि-प्राप्ति के लिए कोई जादू की औषधि नहीं है। ऐसा समझना भ्रान्ति मात्र है।

पहले योग्य बनिए, फिर कामना कीजिए

यह सच है कि ऐसे गुरु को खोज निकालना, जो अपने शिष्य की भलाई के लिए सच्चाईपूर्वक प्रयत्नशील हो, इस संसार में बड़ा ही दुष्कर कार्य है; परन्तु ऐसे शिष्य को ढूँढ़ निकालना भी, जो सच्चाईपूर्वक गुरु के उपदेश के अनुसार चले, अत्यधिक कठिन कार्य है।

आज शिष्य ऐसे उद्धत, अवज्ञाकारी तथा स्वेच्छाचारी हैं कि कोई भी आध्यात्मिक मार्ग का महान् व्यक्ति उन्हें प्रशिक्षित करना नहीं चाहता। वे अपने गुरु को बहुत कष्ट पहुँचाते हैं। वे गुरु के आदेशों का पालन करना नहीं चाहते। वे कुछ ही दिनों में स्वयं ही गुरु बन जाते हैं। गुरु तथा शिष्य की समस्या वास्तव में जटिल है। यदि आप सर्वश्रेष्ठ गुरु को न प्राप्त कर सकें, तो ऐसे व्यक्ति को खोज निकालिए जो कई वर्षों से आध्यात्मिक मार्ग में चल रहा हो, जो कारुणिक तथा निःस्वार्थ हो और जो आपके कल्याण तथा हित का विशेष ध्यान रखता हो।

साक्षात्कार-प्राप्त महात्मा दुर्लभ नहीं हैं। अज्ञानी, सांसारिक बुद्धि वाले व्यक्ति उन्हें सुगमतया पहचान नहीं सकते। केवल कुछ व्यक्ति ही जो शुद्ध हैं, सद्गुणों से सम्पन्न हैं, साक्षात्कार-प्राप्त महात्माओं को जान पाते हैं। वे ही उनकी संगति से लाभ उठा पाते हैं।

साक्षात्कार-प्राप्त महात्माओं की खोज में यहाँ-वहाँ दौड़ने से क्या लाभ ? यदि स्वयं भगवान् कृष्ण भी आपके साथ रहें, तो वे आपके लिए कुछ नहीं कर सकते जब तक आप स्वयं उन्हें पाने के अधिकारी न हों?

ईश्वर तथा संसार-दोनों की एक-साथ सेवा करना असम्भव है। आपको इनमें से किसी एक का त्याग करना ही होगा। आप प्रकाश तथा अन्धकार-दोनों को एक ही समय में नहीं रख सकते। यदि आप आध्यात्मिक सुख चाहते हैं, तो आपको विषय-सुखों का परित्याग करना होगा।

यदि मेरे शिष्यों में से एक ने भी संसार-जाल से मुक्ति प्राप्त कर ली, तो मेरा जन्म सफल रहा। साधकों को शिक्षित करने तथा उन्हें आध्यात्मिक साक्षात्कार की ओर प्रवृत्त करने में ही मैं मानवता की सबसे बड़ी सेवा समझता हूँ। हर साधक शुद्ध तथा उन्नत हो कर आध्यात्मिकता का केन्द्र बन जाता है। वह अपनी विद्वत्प्रतिभा के द्वारा सहस्रों शिशु-आत्माओं को आध्यात्मिक रूपान्तरण एवं पुनरुद्धार के लिए अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा।

संसार में रहने वाले साधक, जिनके पास बहुत से कर्तव्य-भार हैं, गुरु के लिए प्रतीक्षा न करें। उन्हें अपनी रुचि के अनुसार इष्टदेव तथा मन्त्र को चुन कर साधना तथा प्रार्थना में संलग्न हो जाना चाहिए। समय आने पर गुरु उनके लिए प्रकट हो जायेगा। गुरु से मन्त्र-दीक्षा लेना अधिक अच्छा है। गुरु से प्राप्त मन्त्र में रहस्यमयी शक्ति है।

अष्टम अध्याय

ज्ञान-यज्ञ

गम्भीर अनुभव ही अनेकानेक प्रकाशनों में प्रस्फुटित हुए हैं

धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करते समय मुख्य सन्दर्भों को रेखांकित कर लेता हूँ। मैं उन बातों पर सतत चिन्तन एवं मनन करता हूँ। मैंने कठिनाइयों तथा बाधाओं पर विजय पाने के लिए प्रभावशाली तरीके ढूँढ़ निकाले। मैंने अपने निजी अनुभवों को लिपिबद्ध कर लिया। हजारों साधक व्यक्तिगत रूप से अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा अपनी समस्याओं के समाधान हेतु मेरे सम्पर्क में आये। मैंने अपने अनुभव के आधार पर उन्हें उचित आदेश तथा उपचार बतलाये। एक विचार भी नहीं छूटता; क्योंकि मैं सभी विचारों को लिपिबद्ध कर लेता हूँ। मैं साधकों के

अनुभवों को भी बहुत महत्त्व देता हूँ। मैं सूक्ष्म निरीक्षण करता हूँ तथा मुख्य बातों को दूसरे साधकों के हित के लिए लिख लेता हूँ। मैं तुरन्त ही उन अनुभवों को विभिन्न भाषाओं में छपवा डालता हूँ और ध्यान रखता हूँ कि मेरे पत्रों, लेखों, सन्देशों तथा विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वे दूर-दूर के साधकों के पास पहुँच जायें।

बहुत से साधकों के पथ-प्रदर्शन के लिए मैंने 'मन : रहस्य और निग्रह', 'आध्यात्मिक उपदेश', 'अभ्यास के लिए उपदेश' आदि प्रकाशित किये। मैं उपदेशों को क्रमबद्ध कर उन्हें पत्रिका या पुस्तक के आकार में प्रकाशित करता हूँ। इस प्रकार मेरे प्रकाशनों की संख्या बढ़ चली। एक बार जब मैंने 'योगाभ्यास' के द्वितीय भाग के लिए बहुत से नये लेख दिये, तो प्रकाशकों ने सलाह दी कि एक ही भाग में सभी प्रकाशित होने चाहिए। १९३३ में मैंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया-

"आप मेरे कार्य को रोकते क्यों हैं? 'योगाभ्यास ३, ४, ५' इत्यादि कई भागों में प्रकाशित होने दीजिए। जब मेरे पास नये विचार तथा नये उपदेश हैं, तो उनके प्रकाशन में आपत्ति क्यों? मेरी आँखें जब तक ठीक हैं तथा जब तक मेरे पास सत्य के अन्वेषक साधकों के लिए नये सन्देश हैं, तब तक मुझे कार्य करने दीजिए। मानव-जाति की सेवा के प्रति मेरा इतना प्रेम है कि दृष्टि मन्द होने के उपरान्त भी मैं योग्य आशुलिपिकों तथा सचिवों के सहारे प्रकाशन-कार्य को चलाता रहूँगा। ईश्वर करे, यह कार्य प्रगति करे तथा इससे जगत् को सुख एवं शान्ति प्राप्त हो सकें!"

मेरी पुस्तकों में पुनरुक्ति क्यों ?

मैं हृदय, बुद्धि, मन तथा शरीर के सर्वांगीण विकास में विश्वास रखता हूँ। एकपक्षीय विकास से विशेष लाभ नहीं होता। मैं विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों के सन्तों एवं ऋषियों के किसी उपदेश की उपेक्षा नहीं करता। विभिन्न रुचियों एवं प्रवृत्तियों के साधकों की सत्वर उन्नति के लिए मैं सभी योगों का सार प्रदान करता हूँ, जिसे मैं समन्वययोग या पूर्णयोग कहता हूँ। जो उपदेश मैं देता हूँ, वह मेरे अपने अनुसन्धान तथा सहस्रों भक्तों के अनुभव से उद्भूत हैं।

मैं अपनी सारी पुस्तकों में सर्वांगीण विकास के लिए प्रयोगात्मक साधनों पर बल देता हूँ। इसे कुछ लोग पुनरुक्ति-दोष करते हैं; परन्तु सच्चे साधकों के लिए पुनरुक्ति आवश्यक है। उपयोगी पुनरुक्ति के द्वारा वे विषय के मूल्य तथा महत्त्व को समझ लेते हैं। साधकों के मन में गहरी एवं अमिट छाप डालने के लिए ही इन पुनरावृत्तियों का प्रयोग किया गया है। मैं दैनिक जीवन में पालन के लिए मुख्य बातों की पुनरावृत्ति करता हूँ जो अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती हैं। वे भौतिक प्रभावों से चलायमान मन पर सुदूराघात का काम करती हैं और इच्छा-शक्ति को विकसित करने में भी सहायक होती हैं। इनमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए शान्ति, सान्त्वना, मुक्ति तथा पूर्णता का सन्देश होता है। भक्तों के पास मेरी बहुत-सी पुस्तकें हैं; फिर भी वे नये प्रकाशनों की माँग जारी रखते हैं। वे प्रायः लिखा करते हैं- "आपकी पुस्तकों में एक विशेषता यह है कि आपके उपदेश आध्यात्मिक उन्नति के लिए रुचि पैदा करते हैं, फल-स्वरूप उस मार्ग में प्रवृत्ति न होने पर भी मैं कुछ उपदेशों पर चलने के लिए बाध्य हो जाता हूँ। ये पाठ मेरे हितार्थ हैं तथा भौतिक उन्नति के लिए भी अति-लाभदायक हैं। आपकी पुस्तक 'मन : रहस्य और निग्रह' के कुछ पृष्ठों को पढ़ते ही मैं अपने में नयी शक्ति एवं आशा का अनुभव करता हूँ।"

१९३५ में प्रकाशकों ने एक भक्त के पत्र को मेरे पास भेजा, जिसमें अत्यधिक पुनरुक्ति के बारे में शिकायत थी। मैंने इस प्रकार उत्तर दिया- "पुनरुक्ति को सावधानीपूर्वक दूर करना चाहिए। पुनरुक्तियों को दूर करने के लिए आपको धर्मत में चाय भर कर तीन-चार रात बैठना होगा। पुनरुक्ति के भय से महत्त्वपूर्ण बातों को

न हटाइए। जिन उपदेशों का आशय सांसारिक मन के ऊपर गहरा प्रभाव डालना है, उनकी पुनरुक्ति अनिवार्य है। यह जगत् पुनरावृत्ति का क्षेत्र है। हम सभी को प्रसन्न नहीं कर सकते। गीता, उपनिषद् तथा अन्य धर्मग्रन्थ भी पुनरुक्तियों से भरे पड़े हैं। इनको दूर नहीं किया जा सकता । बिना बारम्बार कहे प्रकृति का रूपान्तरण नहीं होता। कुछ वर्षों बाद जब नये संस्करण निकलेंगे, तब पूर्णरूप से कायापलट हो सकेगी-प्रत्येक पैरा तथा वाक्य बदल कर पुस्तक को सुधारा जा सकेगा-जो-कुछ भी मैंने दिया, उस सबको छापिए। एक भी अल्प-विराम अथवा शब्द को न छोड़िए 1" वे भक्त मेरी पुस्तकों में पुनरुक्ति-दोष दिखलाते हैं और साथ ही मेरे सभी प्रकाशनों की सूची भी चाहते हैं। अन्त में वे लिखते हैं-"यह मेरे लिए आहार तथा जीवन है।"

संसार को यह जान कर बड़ा आश्चर्य होगा कि मैं अपनी कई पुस्तकों के नये संस्करण के लिए एक-साथ बहुत से प्रकाशकों को अधिकार प्रदान कर देता हूँ। एक ही पुस्तक भारत, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, इंडोनेशिया तथा अमरीका के कई प्रेसों से छप कर प्रकाशित होती है। मैं कम समय में ही अधिक काम करना चाहता हूँ। १९३४-३६ में लिखे गये मेरे पत्रों से प्रेस के गतिशील काम कराने की मेरी पद्धति स्पष्ट हो जायेगी :

"मैं बीस दिन तथा दश दिन के भीतर ही प्रकाशन चाहता हूँ। क्या आप निरन्तर तथा शीघ्र काम कर सकते हैं? क्या आप तीन-चार पुस्तकें एक ही साथ छाप सकते हैं? शीघ्र कार्य-पूर्ति हेतु कई प्रेसों को लगाइए। एक प्रेस पर निर्भर मत रहिए। ऋषिकेश के छोटे प्रेस से निरन्तर काम लिया जा रहा है। व्यय की चिन्ता न कीजिए। बिल तो चुकाये जायेंगे ही-जल्दी या देर में।"

"पुस्तक को शीघ्र ही समाप्त करने के लिए कई प्रेसों को काम दे डालिए। प्रेस के लोग, सुनार तथा लोहार एक ही श्रेणी के हैं। वे बहुत धीरे-धीरे आराम से काम करते हैं। वे अपने वचन पर टिकते नहीं।"

मेरा लक्ष्य है शीघ्र काम तथा आध्यात्मिक ज्ञान का सत्वर प्रसार । मेरे दूसरे पत्र में यही संकेत किया गया है।

सत्वर कार्य ही मेरा आदर्श है

मैं अपने प्रकाशनों के प्रति जरा भी बन्धन नहीं रखता। कोई भी अच्छी बात तुरन्त पाठकों तक पहुँच जानी चाहिए, जिससे उनका तत्क्षण आध्यात्मिक कल्याण हो सके। मैं पाठकों को दूसरे प्रकाशन के लिए तैयार होने तक प्रतीक्षा करवाना नहीं चाहता। ज्यों-ही नये विचार उठते हैं, त्यों-ही जिस पुस्तक की छपाई चल रही होती है, उसी के अन्त में उन्हें स्थान दे देता हूँ। इसकी भी चिन्ता नहीं करता कि उन विचारों का पुस्तक के विषय के साथ सीधा सम्बन्ध है या नहीं और न शब्दों की बारीकी से परख करने में ही अमूल्य समय नष्ट करना चाहता हूँ।

"छपाई की गलतियों की चिन्ता न कीजिए। गलतियों से आप न डरें। यदि प्रूफ आप मेरे पास भेज दें, तो मैं शुद्ध कर दूँगा। पुस्तक को १२५ पृष्ठ तक ही सीमित न करें। यदि कोई अच्छा विषय है, तो उसे पुस्तक में स्थान दीजिए, तथा पुस्तक के मूल्य में कुछ आने की वृद्धि कर दीजिए। पुस्तक में २०० या ३०० पृष्ठ हो जायें, तो क्या हानि है? आप अच्छी एवं प्रामाणिक पुस्तकों के प्रकाशन से जगत् की सहायता कर सकते हैं।"

प्रशंसनीय पुस्तकों की प्रशंसा करने में मैं नहीं हिचकता हूँ। "योगासन पुस्तक बड़ी सुन्दर है। यद्यपि बाजार में बहुत-सी पुस्तकें हैं, फिर भी इस क्षेत्र में इसकी अपनी विशेषता है।"

विस्तार पर ध्यान देना

विस्तारपूर्वक निर्देश देने में भी मैं बहुत सावधान हूँ।

"आप ॐ (चित्र) पर भी ध्यान की शिक्षा दे सकते हैं। यह सगुण तथा निर्गुण-दोनों प्रकार का ध्यान है। कुछ सुन्दर ॐ चित्र छपवा लीजिए तथा धारणा एवं ध्यान पर कुछ उपदेश भी नीचे लिख डालिए। उसके चारों ओर महावाक्यों को भी रखिए। किसी पृष्ठ पर ४0 (30 छपवा लीजिए। जो जप-माला पसन्द नहीं करते, वे इस पृष्ठ को पढ़ें।"

* * * * *

"ब्रह्मरन्ध्र पर विस्तृत लेख भेजा जा रहा है। यह पर्याप्त है। पद्मदल, निबोधक-अग्नि, निर्वाण-शक्ति इत्यादि साधक को विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकते। ये सब तो उनके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखते। ये सब आध्यात्मिक गूढ़ तत्त्व हैं। किसी अन्य पुस्तक से कुछ भी न लीजिए। मैंने जो कुछ भी लिख दिया है, वह पर्याप्त है। किस अन्य स्थल से विषय-वस्तु को ले कर पुस्तकों की उपयोगिता नष्ट न कीजिए।"

* * * * *

मैं बड़ी सावधानीपूर्वक इस पर निगरानी रखता हूँ कि मेरी पुस्तकें किस प्रकार प्रकाशित हो रही हैं। कभी-कभी प्रकाशकों ने कुछ अंशों को, जो उनके अनुसार उपयुक्त नहीं थे, निकाल देना चाहा। अतः निम्नांकित पत्र में मैंने उन अंशों की महत्ता पर बल देते हुए उन्हें आदेश दिया है कि लेख की शक्ति को बनाये रखने में वे सावधान रहें। भाषा को बदलने से उस शक्ति के नष्ट हो जाने की आशंका है। मैं बहुत अधिक भूल-सुधार एवं सम्पादन को भी पसन्द नहीं करता।

"आप कुछ अंशों को दूर कर सकते हैं; परन्तु याद रखिए कि भाषा अथवा शैली मनुष्यों पर प्रभाव नहीं डालती, अपितु उनके पीछे की शक्ति ही आवश्यक है। भाषा को सुधारने का प्रयास करते समय इस शक्ति को बनाये रखना होगा। परिवर्तन लाते समय आपको लेखक के विचारों पर चिन्तन कर लेना होगा। केवल दार्शनिक शैली एवं भाषा की सजावट से कोई सुधार नहीं आ सकता। लेखक की शक्ति को कभी भी नहीं खोना चाहिए। प्रकाशनों में सुधार लाते समय इस पर ध्यान रखिए।"

निम्नांकित विचार से आपको मालूम हो जायेगा कि मैं अच्छे प्रकाशन को कितना पसन्द करता हूँ :

"भूमिका-सहित पुस्तक बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। आप प्रेस से आलोचना की आशंका कर सकते हैं। यह गलत कल्पना है। कुछ समाचार-पत्र इसकी प्रशंसा करेंगे। यदि आप आकर्षक विज्ञापन देंगे, तो इसकी प्रतियाँ तुरन्त बिक जायेंगी। वेदान्त-अभ्यास के साथ वेदान्त-अध्ययन के लिए यह अच्छा समन्वय रहेगा।"

* * * * *

"योगासन के प्रथम तथा द्वितीय संस्करण में बड़ा अन्तर है। आपने 'परिच्छिन्न आनन्द, बिम्ब आनन्द' आदि संस्कृत शब्दों को हटा दिया है। संस्कृत शब्दों में विशेष शक्ति तथा अर्थगाम्भीर्य है। आपने समालोचना के भय से संस्कृत शब्दों को हटा दिया है। भविष्य में कृपया एक शब्द भी न हटाइए। संस्कृत शब्दों में शक्ति, सौन्दर्य तथा गरिमा है। इनसे विचार-प्रवाह में अल्प मात्र भी रुकावट नहीं आती।"

सर्वाधिकार सुरक्षित रखने में आसक्ति नहीं

मैं प्रकाशकों से सर्वाधिकार सुरक्षित रखने की अपेक्षा नहीं रखता । त्वरित कार्य के लिए मैं अपनी पुस्तकों के कई संस्करण विभिन्न भाषाओं में एक-साथ ही प्रकाशित करने का आदेश देता हूँ। प्रकाशकों से कुछ भी प्रतिदान की माँग नहीं करता। वे मुझे स्वत्व-शुल्क दें या न दें; मैं सभी प्रकाशकों को विश्व-भर में व्यापक प्रचार के लिए अपनी पुस्तकें छपवाने की अनुमति दे डालता हूँ। साधारणतः वे एक हजार प्रतियों पर १०० प्रतियाँ मुझे देते हैं। मैं उन प्रतियों को बेच कर लाभ नहीं उठाता। मैं उन प्रतियों को सभी प्रसिद्ध पुस्तकालयों तथा शैक्षणिक और धार्मिक संस्थाओं में वितरित कर देता हूँ। समाचार-पत्रों में भी समालोचना के लिए उन्हें भेजता हूँ। इस प्रकार प्रचार-कार्य समुचित रूप से हो पाता है; प्रतियाँ आसानी से बिक जाती हैं तथा प्रकाशकों को लाभ होता है। मैं तो सभी के लाभ की कामना रखता हूँ।

मेरा ध्येय ज्ञान का प्रसार है। हिमालय के प्रदेश में गंगा के तट पर एक छोटे कुटीर में बैठ कर मैंने सैकड़ों उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनका प्रसार सारे संसार में विभिन्न भाषाओं में हो रहा है। मुझमें अर्थ-साधना की कामना नहीं थी; यही कारण है कि मैं ऐसा करने में समर्थ बन सका । मेरे उदार विचारों के कारण, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, अमरीका तथा इंडोनेशिया जैसे देशों के बहुत से प्रकाशक आकर्षित हुए हैं। वेदान्त जैसी उच्च दर्शन-सम्बन्धी अमूल्य पुस्तकों को कुछ प्रकाशक प्रकाशित करना नहीं चाहते। वे मैजिक, चमत्कार तथा योग पर पुस्तकें प्रकाशित कर अधिकाधिक लाभ उठाना चाहते हैं। वेदान्त तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी ग्रन्थ धीरे-धीरे ही बिकते हैं; अतः प्रकाशक गण उनमें विशेष अभिरुचि नहीं रखते । अतः मैंने स्वयं ही उन्हें प्रकाशित करने का विचार किया। भावी पीढ़ियों के लाभ तथा बहुमूल्य पुस्तकों की रक्षा के लिए मैं सभी पुस्तकों के सर्वाधिकार को दिव्य जीवन संघ अथवा योग-वेदान्त अरण्य अकादमी तक ही सीमित रखता हूँ। फिर भी मैं दूसरों को भी पुस्तकें प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करता हूँ। यद्यपि मैं ग्रन्थ की बिक्री के अनुसार स्वत्व-शुल्क की माँग नहीं करता, फिर भी मैं अपने प्रकाशकों से नम्रतापूर्वक कुछ प्रतियाँ निःशुल्क वितरण के लिए माँग लेता हूँ। वे प्रत्येक हजार पर १०० या १५० प्रति उदारतापूर्वक दे देते हैं। रायल्टी की प्रतियों को मैं 'गणेश-पूजा' कहता हूँ। १९३६ में मैंने एक भारतीय प्रकाशक को निम्नांकित पत्र लिखा :

"कृपया गणेश-पूजा की प्रतियों की याद रखिए। यह आपके लाभ के लिए है। जब कभी कोई वृक्ष फल देता है तो पहला फल ईश्वर या संन्यासी को प्रदान करते हैं; तभी मनुष्य को सफलता तथा सम्पत्ति प्राप्त होती है। गणेश-पूजा की प्रतियों के विषय में भी यही बात है। प्रकाशक इस लोक में तथा परलोक में ऐश्वर्य प्राप्त करेगा। मैं अपनी पुस्तकों के प्रचार के लिए उन प्रतियों का उपयोग करता हूँ।"

मुझे इस बात में बड़ी प्रसन्नता है कि सारी पुस्तकें अकादमी प्रेस में ही छपें; क्योंकि यहाँ मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता है। प्रेस से पुस्तकों के निकलते ही मैं सभी प्रतियों को निर्मूल्य ही आश्रमवासियों, दर्शनार्थियों, यात्रियों आदि में बाँट देता हूँ तथा सभी भक्तों, दिव्य जीवन संघ की शाखाओं और धार्मिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं में डाक द्वारा भेजवा देता हूँ। मैं नित्य-प्रति कार्यालय की सारी अलमारियों को खाली कर देता हूँ, फिर भी प्रेस से नयी-नयी पुस्तकें निकलती रहती हैं। आजकल सारे भारत तथा हांगकांग में बहुत से भक्त हैं जो मेरी पुस्तकों को बहुत बड़ी संख्या में छपवाते तथा सभी प्रतियों को वितरणार्थ मेरे पास भेज देते हैं। जब भक्त गण प्रकाशन-कार्य अथवा आश्रम में साधकों के व्यय अथवा अस्पताल में रोगियों के सहायतार्थ धर्म-दान भेजते हैं, तब मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती।

लाभ के प्रति मेरा दृष्टिकोण

एक बार एक प्रकाशक के साथ हिसाब के सम्बन्ध में कुछ मतभेद उठ खड़ा हुआ था। मैंने अपने शिष्य को शान्त रहने का आदेश दिया। मेरे कुछ पत्रों से आपको व्यवसायियों के प्रति मेरे दृष्टिकोण का ज्ञान होगा :

"शान्त रहिए। कभी भी क्षोभ न कीजिए। विशाल हृदय तथा गम्भीर बनिए। सारा जगत् आपका, आपका शरीर तथा आपका घर है। साक्षी बनिए। देखिए।"

"झगड़ा न कीजिए। सभी हालातों में नम्र, शिष्ट तथा प्रसन्न रहिए। रुपया कुछ भी नहीं है। प्रकाशकों के साथ मित्रवत् व्यवहार कीजिए। निर्भय बनिए । हिसाब के विषय में झगड़ा न कीजिए। सज्जन बनिए। यदि वे गलती कर रहे हैं, तो उनको भूल बतला दीजिए। यदि वे फिर भी सुधारना नहीं चाहते, तो मूक रहिए। भले ही भारी क्षति उठानी पड़े, फिर भी सारी बातों की उपेक्षा कर दीजिए। अपने पत्र में कभी भी कटु शब्दों का प्रयोग न कीजिए। प्रत्येक पंक्ति में शिष्टता तथा नम्रता का भाव भरा रहना चाहिए। न्यायालय में गये बिना ही हिसाब तय कर लीजिए। संन्यासी की भाँति काम कीजिए।"

नवम अध्याय

जीवन का आदर्श

जीवन-दर्शन

सम्यक् जीवन यापन करना ही दर्शन का उद्देश्य है। सम्यक् जीवन का अर्थ उसकी परिभाषा पर निर्भर करता है। यह दुर्बलताओं से रहित ज्ञानमय जीवन है; क्योंकि दुर्बलतामय जीवन तो अदार्शनिक जीवन है। दर्शन न तो बौद्धिक विलास है और न कोरा पाण्डित्य ही, जो संसार के अनुभवों की उपेक्षा करता हो। यह विद्वत्ता का चमत्कार नहीं और न चिन्ता-रहित मन की उड़ान है, वरन् दर्शन जागतिक अनुभव के तथ्यों का विवेकपूर्ण विश्लेषण तथा इस आधार पर निदिध्यासन अथवा मनन के द्वारा किसी निश्चित वैज्ञानिक सिद्धान्त पर निर्भर करता है, जिससे मनुष्य अपने विभिन्न प्रकार के जागतिक कारणों को नियन्त्रित रख सके। दर्शन पूर्ण जीवन-एक प्रकार का ऐसा जीवन बिताने की कला है जहाँ साधारण दृष्टिकोण का अतिक्रमण हो जाता है, जो अस्तित्व मात्र का साक्षात्कार ही है।

मैं जिस दर्शन की शिक्षा देता हूँ वह न तो स्वप्नात्मक, कल्पनावादी, विश्वनिषेधक भ्रान्ति का ही सिद्धान्त है और न मानववाद के अनुसार स्थूल जगत् की सत्यता का ही समर्थक है। यह तो जगत् के ईश्वरत्व, मनुष्य की आत्मा का अमृतत्व, आत्मा की परमात्मा के साथ एकता तथा विश्व की हर वस्तु का स्वरूपतः ब्रह्म से, जो एकमेव सत्य है, एकता का प्रतिपादन करता है। वेदान्त यद्यपि अतिभौतिक जगत् का दर्शन है, फिर भी यह जगत् की मर्मस्पर्शी एवं दयनीय अवस्था की उपेक्षा नहीं करता और न तो व्यावहारिक जगत् की ओर उन्मुख शरीर तथा मन का निषेध ही करता है।

पूर्ण विकास

एक ही ब्रह्म अथवा परमात्मा जगत् के विभिन्न रूपों में प्रकट होता है जो उनकी अभिव्यक्ति के विभिन्न क्रम अथवा अंश हैं, अतः साधक को पहले निम्न अभिव्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करनी होगी और उसके बाद ही वह उन्नत अभिव्यक्ति में अपना पद-निक्षेप कर सकता है। सुदृढ़ स्वास्थ्य, सूक्ष्म बुद्धि, गहन ज्ञान, प्रबल संकल्प तथा नैतिक पूर्णता-ये सब वेदान्त के अनुसार पूर्णता-प्राप्ति के विभिन्न पहलु हैं। मैं निम्न प्रकृति के सर्वांगीण नियन्त्रण पर जोर देता हूँ। वेदान्त के उपदेश योग, भक्ति अथवा कर्म के विरोधी नहीं हैं। ये सब एक ही पूर्ण अनुभव के विभिन्न घटक हैं।

यथा-व्यवस्था का गुण रखना, सभी वस्तुओं में अच्छाई के दर्शन करना तथा प्रकृति के सारे तत्त्वों को व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयोग में लाना, मानवी शक्तियों के समन्वयात्मक विकास के द्वारा आत्म-साक्षात्कार के मार्ग को प्रशस्त करना-ये ही कुछ प्रधान घटक हैं, जिनसे मेरे जीवन-दर्शन का निर्माण होता है। सभी से प्रेम करना तथा सभी में ईश्वर के दर्शन करना, सबकी सेवा करना, क्योंकि ईश्वर ही सब है, पूर्णता के अनुभव में सबका ईश्वर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध का साक्षात्कार करना-ये ही मेरे प्रमुख उपदेश हैं। मैंने अपने सारे लेखों में चेतना के भौतिक, प्राणिक, मानसिक तथा बौद्धिक स्तरों पर विजय पाने के लिए बहुत से उपाय बतलाये हैं जिनसे साधक ब्रह्म-साक्षात्कार के महान् लक्ष्य की ओर बिना प्रतिबन्ध के अग्रसर हो सके। वेदान्त वह दर्शन तथा जीवन-मार्ग है जो आध्यात्मिक साक्षात्कार, अमर सर्वव्यापक आत्मा के अपरोक्ष अनुभव-जहाँ यह जगत् आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं भासता का उपदेश देता है। फलतः साक्षात्कार-प्राप्त ज्ञानी 'सर्वभूतहिते रताः' सारे जगत् का ही संरक्षक बन जाता है।

मेरा मत

प्रत्येक व्यक्ति अथवा रूप में आत्मा को देखना, सर्वत्र सर्वदा तथा जीवन की सभी परिस्थितियों में ब्राह्मी चैतन्य का अनुभव करना, प्रत्येक वस्तु को आत्मा के रूप में देखा, सुनना, चखना, सूँघना अथवा अनुभव करना ही मेरा मत है। ब्रह्म में जीना, ब्रह्म में द्रवित होना तथा ब्रह्म में विलीन हो जाना-यही मेरा मत है। ब्रह्म के योग में स्थिर रहना; हाथ, मन, इन्द्रिय तथा शरीर को मानव-सेवा में लगाना; भक्तों को प्रोत्साहित करने के लिए भगवान् के नामों का गान करना, सच्चे साधकों को उपदेश देना; पुस्तकों, परिपत्रों, पत्रों, पत्रिकाओं तथा भाषणों के द्वारा ज्ञान का प्रचार करना-यही मेरा मत है।

विश्व-बन्धु एवं विश्व-हितैषी बनना, गरीब, अनाथ, असहाय तथा पतित जनों का मित्र बनना ही मेरा मत है। बीमार व्यक्तियों की सेवा, सहानुभूति, प्रेम तथा सावधानी के साथ उनकी शुश्रूषा करना, निराशों को प्रोत्साहित करना, सभी में सुख एवं शक्ति का संचार करना, प्रत्येक प्राणी के साथ एकता का अनुभव करना तथा सभी के प्रति समदृष्टि रखना-यही मेरा मत है। मेरे मत में न तो सन्त हैं और न पापी, न तो किसान हैं और न महाराजा, न तो

भिक्षुक हैं और न सम्राट्, न तो मित्र हैं और न शत्रु, न तो पुरुष हैं और न स्त्री, न तो गुरु हैं और न चेला । सब ब्रह्म ही है। सब सच्चिदानन्द है।

शक्ति तथा महान् कार्य का रहस्य

१९५८ में मैं ७२ वर्ष की अवस्था का हूँ। मैं अपने को सदा कार्य में संलग्न रखता हूँ। मैं सदा सुखी हूँ। मैं अधिक काम कर सकता हूँ। मैं आश्रम के सैकड़ों साधकों की व्यक्तिगत देख-रेख करता हूँ तथा दिव्य जीवन संघ, योग-वेदान्त अरण्य अकादमी और सामान्य चिकित्सालय की व्यवस्था करता तथा पत्र-व्यवहार के द्वारा दूर-दूर देशों के साधकों का पथ-प्रदर्शन करता हूँ। मुद्रणालय की ओर तथा उपयोगी पुस्तकों को विद्यार्थियों, पुस्तकालयों तथा धार्मिक संस्थाओं में बाँटने की ओर विशेष ध्यान देता हूँ। मैं और अधिक काम कर सकता हूँ। ईश्वरीय चैतन्य को सदा बनाये रखना ही मेरे प्रबल कार्य तथा अबाध शक्ति का रहस्य है।

अपने दृष्टिकोण को बदल डालिए तथा सदा सुखी रहिए। सर्वत्र शुभ के दर्शन कीजिए। आनन्द-विभोर हो नृत्य कीजिए। मन को ईश्वरीय विचारों से सन्तृप्त कर डालिए। आप तत्क्षण ही आन्तरिक आध्यात्मिक बल का अनुभव करेंगे। यह शान्ति अवर्णनीय है। मन को अन्तर्मुखी, एकाग्र तथा स्थिर बनाने के लिए किसी भी साधना को अपनाइए। इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखिए। सदा सावधान रहिए। अटूट श्रद्धा रखिए। संकल्प-शक्ति का विकास कीजिए, अन्यथा विक्षेप तथा आलस्य आपको दबायेंगे।

प्रार्थनाओं द्वारा उपचार

सारे जगत् में डाक्टर लोग गरीबों के ऊपर तरह-तरह की औषधियों का प्रयोग करते हैं। डाक्टर जब तक स्वार्थ साधन तथा अधिकाधिक धन कमाने के लिए काम करते हैं, तब तक स्थायी रूप से रोग निवारण कैसे हो? आयुर्वेदिक प्रणाली में कुशल वैद्य हिमालय की जड़ी-बूटियों से असली औषधि का निर्माण करते हैं। वे रोगियों की नाड़ी का अध्ययन कर रोगों को पहचान लेते तथा स्थायी रूप से रोग निवारणार्थ शक्तिशाली औषधियाँ देते हैं। रोगियों को भी प्राकृतिक साधनों का सहारा लेना होगा तथा अनुकूल आहार करना होगा। उन्हे निपुण डाक्टरों के आदेशों पर चलना होगा।

आश्रम में 'शिवानन्द सामान्य चिकित्सालय' में चिकित्सा के सभी साधनों का समन्वय है। यहाँ चिकित्सा की सभी प्रणालियों के निपुण विशेषज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त मुझे मन्त्र-शक्ति तथा ईश्वर-कृपा में अटूट विश्वास है। विश्वनाथ-मन्दिर में विशेष प्रार्थनाओं के द्वारा सुदूर देशों के लोगों को भी असाध्य बीमारियों से चमत्कार के समान मुक्त होते मैंने देखा है। प्रार्थना द्वारा उपचार करने का मैं महान् हिमायती हूँ। मन्त्र-जप तथा प्रार्थना से रोग दूर हो जाते हैं। इनके परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं। ईश्वर का नाम इतना प्रभावशाली है। मैं इसे 'नामोपैथी' कहता हूँ।

दशम अध्याय

आध्यात्मिक प्रगति के लिए मेरा तरीका

अनासक्त परन्तु सावधान

मेरे कुटीर में सैकड़ों बहुमूल्य पुस्तकों, वस्तुओं तथा वस्त्रों से भरी हुई बहुत-सी पेटियाँ हैं। मुझे ठीक-ठीक यह भी ज्ञात नहीं है कि किस पेटी में क्या है? न तो मेरे पास कोई कुंजी ही है। मैं कुछ भी 'गुप्त' नहीं रखता। मैं कुछ भी छिपा कर नहीं खाता। मैं ऐसा वैरागी होने का बहाना नहीं करता जो स्वयं तो खाली हाथ रहते हैं; परन्तु दूसरों को अपने लिए रुपये बटोरने का आदेश देते हैं। यात्रा में मैं दो या तीन जेबों में पर्याप्त रुपये रख लेता था और जो लोग मेरे साथ जाते थे, उन्हें मैं रुपयों से भरी थैलियां अलग रखने के लिए देता था।

मैं फाउन्टेन पेन, चश्मे, स्वाध्याय की पुस्तकें तथा महापुरुषों तथा भक्तों से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं को बड़ी सावधानी के साथ रखता हूँ। कई वर्ष पहले टहलने के लिए निकलते समय कुटीर में ताला बन्द कर कुंजी को अपनी धोती के एक छोर में बाँध लेता था। मैं स्वयं फटे-पुराने कोट भले पहनूँ; परन्तु दूसरों को अच्छे वस्त्र प्रदान करता था। मैं ऋण की चिन्ता नहीं करता। मुझे ईश्वरीय भण्डार से आवश्यक सहायता स्वतः प्राप्त हो जाती है। मैं पग-पग पर ईश्वर की कृपा का अनुभव करता हूँ। मैं सदा सभी नाम-रूपों के पीछे ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता हूँ।

आजीवन साधना

साधु तथा योगी जन कुछ काल तक साधना तथा स्वाध्याय करते हैं; परन्तु थोड़ा नाम तथा यश के मिलने पर ही अपनी साधना छोड़ बैठते हैं। यह भारी भूल है। यही उनके पतन का कारण है। साधुओं तथा महात्माओं को जीवन के अन्तिम क्षण तक साधना करते रहनी चाहिए। तभी ईश्वरीय चैतन्य को बनाये रखना सम्भव होगा। दूसरों के लिए भी यह सुन्दर उदाहरण एवं प्रेरणा का स्रोत होगा। साधु को बोलने तथा प्रचार करने की आवश्यकता नहीं। उसका जीवन ही स्वतः वह ग्रन्थ है जो जगत् को प्रकाशित करेगा। आज भी मैं अपने सभी पत्रों में 'ॐ ॐ ॐ' तथा 'हरि ॐ तत् सत्' लिखा करता हूँ। अपने पत्र का आधा पृष्ठ में मन्त्र अथवा दार्शनिक विचारणे से भर डालता हूँ। साधकों के प्रति पत्रों में कुछ लिखने से पहले मैं मन्त्र अवश्य लिख लेता हूँ।

चौबीस घण्टों के अन्दर मैं पाँच या छह प्रकार की साधना कर लेता हूँ-जा, ध्यान, आसन एवं प्राणायाम-सहित व्यायाम, पूजा, स्वाध्याय, लेखन-कार्य तथा जगत् की सेवा, महात्माओं, गरीबों तथा बीमारों की सहायता। इस प्रकार मैं अपने मन को सर्वदा दिव्य चैतन्य से अनुप्राणित रखता हूँ। मैं आराम तथा शिथिलन के साथ प्राणायाम का सुन्दर समन्वय रखता हूँ। मैंने इस तरह ३५ वर्ष ऋषिकेश में बिताये हैं तथा प्रचुर-रूप से आध्यात्मिक शक्ति एवं बल प्राप्त किया है। मेरे स्वास्थ्य का स्तर ऊँचा है। मैं प्रति क्षण शान्ति तथा सुख का उपभोग करता हूँ। मैं अपने कुटीर से एक घण्टे के लिए प्रातः समय बाहर निकलता हूँ तथा दूर स्थानों में रहने वाले भक्तों का चिन्तन कर लिया करता हूँ, फिर भी मैं अनुभव करता हूँ कि प्रतिदिन लगभग दश घण्टे काम कर सकता हूँ। नियमित साधना तथा ईश्वर की कृपा ही इसका रहस्य है।

इतने फोटो क्यों ?

पवित्र मन्दिरों के व्यस्थापक लोगों को मूर्तियों के फोटो नहीं लेने देते। बदरी तथा केदार में मन्दिरों के अन्दर लोगों को कैमरा ले जाने की अनुमति नहीं देते। यह आश्चर्यजनक बात है। कुछ भारतीय साधु तथा महात्मा गण अपने फोटो नहीं लेने देते। वे समझते हैं कि ऐसा करने से उनकी आध्यात्मिक शक्ति का हास हो जायेगा। मैं इन बातों में जरा भी विश्वास नहीं करता। मैं हर व्यक्ति को उसकी इच्छा के अनुसार फोटो लेने देता हूँ। बैठते हुए, दौड़ते हुए, टहलते हुए, बातचीत करते हुए, खाते हुए, गंगा में स्नान करते हुए, खेलते हुए, ध्यान, स्वाध्याय अथवा मन्दिर में पूजा के समय किसी भी अवसर पर मेरा फोटो ले सकते हैं। भक्त गण चित्र के द्वारा प्रेरणा ग्रहण करते हैं। किताबों तथा पत्रिकाओं में चित्र रहने से उनका आकर्षण बढ़ जाता है। मैं जरा भी रोक नहीं रखता। मैं तो प्रत्येक वस्तु में भलाई को ही देखता हूँ।

सभी देशों से बड़े-बड़े लोग इस आश्रम में आते हैं। संसार के सभी भागों से सच्चे साधक आ कर यहाँ पर कुछ महीनों अथवा कुछ वर्षों तक मेरे साथ ठहरे रहते हैं। वे अपने साथ मेरा फोटो खिंचवाना चाहते हैं। मैं क्यों अकारण उनको अप्रसन्न बनाऊँ? विद्यार्थियों के वर्ग गरमियों की छुट्टियों में यहाँ आ कर ऋषिकेश में ठहरते हैं तथा वे मुझे बीच में रख कर एक सामूहिक फोटो लेते हैं। मेरा फोटो संसार के महापुरुषों, ऋषियों तथा सन्तों, भक्तों, आश्रम के साधकों तथा सेवकों, अस्पताल के बीमारों तथा स्कूल के बच्चों के साथ लिया गया है। मेरा फोटो सूट तथा हैट के साथ, लँगोटी तथा ओवरकोट के साथ, स्कूल-शिक्षक की भाँति पगड़ी के साथ, मोटरकार में, वायुयान में, रामेश्वरम् में बैलगाड़ी पर (१९५० ई.) तथा १९५३ में रुड़की में साइकिल-रिक्शा पर लिया गया है। मैं फोटो खिंचवाते समय महाराजा, भक्तों या रेलवे प्लेटफार्म के कुलियों, हिमालय के महात्माओं तथा आश्रम के मेहतरों में कोई भी भेद नहीं रखता। मैंने आश्रम के बन्दरों, बिल्लियों, कुत्तों, मछलियों तथा हाथियों और चीतों के साथ फोटो खिंचवाये हैं। मैं इस पर जरा भी विश्वास नहीं करता कि बुरी निगाह के कारण मेरी आध्यात्मिक शक्ति कम हो जायेगी। मैं तो इस बात का ध्यान रखता हूँ कि जगत् कितना लाभ उठायेगा। मैं अपने निकट के लोगों को प्रसन्न तथा सुखी देख कर आनन्दित होता हूँ।

आत्म-निर्भरता

मैं स्वयं ही कमरा साफ करना, गंगा से पीने के लिए पानी लाना, कपड़ों तथा बरतनों को साफ करना, भिक्षा के लिए क्षेत्र को जाना आदि-आदि अपने सारे कार्यों को करता था। मैं स्वयं अपने लेखों तथा साधकों के लिए पत्रों को टाइप करता था। मैं सावधानी के साथ पैकेट बना कर उनको साधकों के लिए डाक द्वारा भेजा करता था। मैं कभी भी साधकों पर निर्भर नहीं था। मैं कभी भी ऐसा पसन्द नहीं करता था कि वे लोग बारम्बार मेरे कमरे में आ कर मेरे दैनिक कार्यक्रम में विघ्न डालें। यात्रा पर निकलने पर मैं स्वयं ही अपना सामान ढोता था। जब कुली मेरे पत्रों तथा किताबों के भारी गट्ठरों को ले जाते, तो मैं उनको उदारता के साथ पर्याप्त पैसे दिया करता था। मैं उन धनी आदमियों पर खेद करता हूँ जो कि प्लेटफार्म पर दो आने के लिए कुलियों के साथ झगड़ा करते हैं।

आश्रम के कार्यों के बढ़ जाने पर मेरे पास इस प्रकार के कार्यों के लिए समय नहीं रहा। इनमें से कुछ कार्यों की देख-भाल के लिए मुझे कुछ सच्चे साधक भी मिल गये। निष्काम सेवा के द्वारा चित्त-शुद्धि भी होती है। अतः मैंने उनको इन कार्यों को करने तथा रोगियों और दुःखियों की सेवा करने की अनुमति दे दी। मैं आश्रमवासियों तथा अतिथियों की आवश्यकताओं की देख-रेख सावधानी के साथ करता था। मैं स्वयं इस बात का ध्यान रखता था कि उनके पास लालटेन (उस समय बिजली का प्रबन्ध न था), चारपाई, बिछावन तथा अध्ययन के लिए पुस्तकें उनके कमरे में हैं या नहीं तथा उनको समय पर चाय, दूध तथा भोजन मिलता है या नहीं? अब तो

आश्रम में सैकड़ों साधक हैं। सारी चीजें व्यवस्थित रूप से स्वतः ही संचालित होती हैं। मैं मौन बैठ कर देखता तथा ईश्वर की कृपा का आनन्द उठाता हूँ। मैं कार्य के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण करता हूँ। साथ-ही-साथ सभी सदस्यों को आदेश देता तथा सब विभागों को योग्य व्यक्तियों के अधीन रख देता हूँ। जिनके पास योग्यता नहीं है, वे लोग भी कुछ ही दिनों में अपने काम में दक्ष हो जाते हैं; क्योंकि मैं उनको पूर्ण स्वतन्त्रता देता हूँ तथा उन पर पूरा उत्तरदायित्व डाल देता हूँ। इसके साथ ही मैं उनमें अपना पूरा विश्वास भी रखता हूँ।

प्रत्येक वस्तु के पीछे एक उद्देश्य है

मैं स्वभावतः ही गम्भीर हूँ। मैं साधना, स्वाध्याय तथा सेवा में संलग्न रहता हूँ। मेरी एकाग्रता तथा शान्ति में कुछ भी व्यवधान नहीं डाल सकता। मैं सभी परिस्थितियों में सुखी रह कर अपने कार्यों की सफलतापूर्वक देख-रेख करता हूँ। कभी-कभी अवसन्नों को उत्साहित करने तथा उदासों को प्रसन्न बनाने के लिए मैं विनोदी जान पड़ता हूँ। मैं अपने साधकों तथा भक्तों के साथ हँस कर तथा खेल कर उन्हें बच्चों के समान ही हँसा सकता हूँ; परन्तु प्रत्येक हँसी तथा विनोद के पीछे एक उद्देश्य होता है। मैं प्रत्येक वस्तु की एक सीमा रखता हूँ। मेरे साथ के लोगों की उन्नति के लिए प्रत्येक शब्द तथा कार्य एक निश्चित उद्देश्य रखता है। विनोद तथा हँसी के सहारे, बिस्कुट तथा फल देते समय मैं अपने साधकों की कमजोरियों का पता लगा लेता हूँ तथा उन्हें उन कमजोरियों तथा दोषों को दूर करने का रास्ता दिखाता हूँ। मैं बकवास का पक्का विरोधी हूँ। मैं अपने साधकों को बकवास से बचने तथा एकान्त में मनन अथवा काम में संलग्न रहने का आदेश देता हूँ। गंगा में स्नान करते समय या सन्ध्या को हर समय मैं उन्हें अकेले जप करते रहने का आदेश देता हूँ।

सरल जीवन तथा उदारता

मैं मितव्ययी हूँ। व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए मैं अधिक व्यय नहीं करता। मैंने वर्षों तक क्षेत्र की भिक्षा पर आश्रित रह कर जीवन बिताया है। उन्नत विचारों के लिए सरल जीवन आवश्यक है। इसके द्वारा मन तथा शरीर पर विजय पाने में सहायता मिलती है। आज भी क्षेत्र की भिक्षा को मैं पसन्द करता हूँ तथा फटे कपड़े पहनता हूँ। मैं अपने मन को इन शब्दों के द्वारा सदा अनुशासित करता हूँ: "कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः" -वे धन्य हैं जो वैराग्यवान् हैं। आश्रम में बहुत से सुन्दर मकान बन चुके हैं; परन्तु फिर भी मैं पवित्र गंगा के किनारे एक किराये के मकान में रहता हूँ। सरल जीवन में कुछ विशेष आनन्द है; परन्तु तपस्या के नाम पर मैं कष्ट नहीं उठाता। आश्रम के सुधार तथा किसी साधक को किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर मैं शीघ्र ही उसकी व्यवस्था कर देता हूँ।

मैं पग-पग पर जगत् तथा साधकों की उन्नति के विषय में सोचता हूँ। जब भक्त गण बड़ी श्रद्धा के साथ बहुमूल्य वस्तुएँ तथा मिठाइयाँ भेंट देते हैं, तो मैं उनको बड़े प्रेम के साथ स्वीकार कर लेता हूँ। मैं उन्हें दानदाताओं को प्रसन्न करने में लगाता हूँ अथवा योग्य व्यक्तियों को दे डालता हूँ। दूसरों की सेवा तथा सहायता करते समय मैं प्रत्येक वस्तु सर्वोत्तम प्रकार की हो, इसका ध्यान रखता हूँ। जब मुझे विशेष प्रकार के फाउन्टेन पेन, कोट, शाल, कुरसी आदि मिलते हैं, तो मैं शीघ्र ही वैसी वस्तुओं को आश्रम के मुख्य कार्यकर्ताओं तथा प्रमुख व्यक्तियों को देना चाहता हूँ। मैं वस्तुओं को खरीदने के सुअवसर की ताक में रहता हूँ; क्योंकि उन्नतिशील संस्था में जहाँ कि चन्दे के बल पर महान् कार्य किये जाते हों, तुरन्त रुपये प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। मैं सुअवसर की ताक में रहता हूँ और एक-एक कर आश्रम में सभी साधकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करता हूँ। फल तथा मिठाई मिलने पर मैं उनको गुप्त रूप से अपनी कुटियां में नहीं रखता; अपितु उनको सत्संग हाल में ला कर एकत्र व्यक्तियों में बाँट देता हूँ तथा स्वयं थोड़ा भाग प्रसाद के रूप में ग्रहण करता हूँ। भक्तों के द्वारा भक्ति, प्रेम तथा श्रद्धा के साथ लाये

गये मिष्टान्नों को मैं मधुमेह रोग से पीड़ित होने पर भी प्रचुर मात्रा में खा लेता हूँ। मुझ पर इसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता।

किसी फैशन का दास नहीं

मुझे फैशन अथवा स्टाइल मालूम नहीं है। यह तो अभिशाप है। मैं विषय-सुख के लिए जीवित नहीं हूँ। यह माया की उपज है। यह अभिमानी तथा अज्ञानियों का मार्ग है। मैं सदा अपनी धोती घुटने के ऊपर पहनता हूँ। पहनावा, चाल, बोली तथा व्यवहार के द्वारा मैं सुगमतापूर्वक विभिन्न मनुष्यों के अहंकार का पता लगा लेता हूँ तथा उसको दूर करने के लिए तरीके बतलाता हूँ। कभी-कभी मैं पगड़ी पहनता है। तथा लम्बी टहलने की छड़ी रखता हूँ। स्वर्गाश्रम में भ्रमण के समय मैं एक लम्बी उड़ी रखता था। एक नासिका से दूसरी नासिका में साँस को बदलने के लिए मैं उम छड़ी को योगदण्ड के समान काम में लाता था। इस प्रकार से मैं अपनी स्वर-साधना किये जाता था। शुरू में मैं जूते तथा छाते का भी प्रयोग नहीं करता था। हमेशा जूता, छाता, छड़ी का उपयोग करने से भी मनुष्य के चाल-ढाल तथा भाव में पूर्ण विभिन्नता आ जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रगति

प्रगति के स्तर, अहंकार तथा निम्न मन की अवस्था के अनुसार साधना के भी विभिन्न प्रकार हैं। दृढ़ तथा सुपुष्ट शरीर और सुन्दर स्वास्थ्य का होना साधक के लिए अत्यावश्यक है। अनुकूल वातावरण में स्वतः ही अधिकारी के अन्य सभी गुण विकसित हो जायेंगे। यदि साधक श्रद्धा तथा सच्चाई से युक्त है, तो चाहे वह किसी भी स्तर में क्यों न हो, उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी ही। विशेष क्षमता तथा गुणों की आवश्यकता नहीं। वर्षों तथा गम्भीर साधना तथा एक पैर पर खड़े हो कर जप करने की भी आवश्यकता नहीं है। मेहतर का काम, टाइपिंग, लिखना, जल लाना, रोगी की शुश्रूषा करना, दीनों की सहायता करना-सेवा के लिए इन सभी प्रकारों में उचित भाव रखने पर इनको योग में परिणत किया जा सकता है। साधक में नवीन दृष्टिकोण होना चाहिए। उसे विवेक तथा वैराग्य के द्वारा प्रत्येक कदम पर अहंकार को कुचल देने का प्रयास करना चाहिए। सतत जप, प्रार्थना तथा क्रमिक ध्यान के द्वारा दिव्य चैतन्य से मन को ओत-प्रोत कर डालें।

वैयक्तिक देख-रेख तथा उदार दृष्टिकोण

आश्रम का भोजनालय ही युद्ध का क्षेत्र हुआ करता है। कार्यकर्ताओं में सभी प्रकार के उपद्रव तथा भ्रान्तियाँ, घृणा तथा द्वेष भोजनालय से ही प्रकट होते हैं। भोजनालय की ओर से साधकों के सम्बन्ध में जो कहानियाँ मुझे सुनने को मिलती हैं, उनसे मैं उनके स्वाद, स्वभाव तथा आध्यात्मिक प्रगति तथा इन्द्रिय-संयम का सुगमता से पता लगा लेता हूँ। यह ही आश्रम में विक्षोभ का मुख्य केन्द्र है; किन्तु यह कार्यकर्ताओं के आशु आध्यात्मिक उद्विकास का तथा वैश्व-प्रेम, सहानुभूति, करुणा, धैर्य तथा उदारता के विकास का सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र भी है। यहाँ पर लोगों को समायोजन तथा समर्पण का प्रशिक्षण अलौकिक रूप से दिया जाता है।

आश्रमवासियों की बड़ी संख्या तथा दर्शनार्थियों की भीड़ के कारण एक ही प्रकार का भोजन प्रचुरता से तैयार करने की व्यवस्था की गयी है। दो या तीन प्रकार के भोजन तैयार होते हैं जो कि भारत के विभिन्न भागों के लोगों तथा विदेशों से आने वाले साधकों के अनुकूल हों। विनोद में ही मैं लोगों से कहता हूँ- "यदि घी न मिले तो दूध लो, यदि दूध न मिले तो मट्ठा माँगो। यदि वह भी न मिले तो खूब गंगा-जल पीओ।"

आश्रम के कुछ साधकों के लिए जिन्हें कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है अथवा जो मूक प्रबल साधना करते हैं या जिन्हें अधिक शक्तिदायक भोजन की आवश्यकता है, मैं उनको शक्तिदायक आहार देने की विशेष व्यवस्था करता हूँ। मैं उनके कुटीरों में फल, बिस्कुट तथा मक्खन भेजता हूँ। मैं उनके बिना माँगे ही उनकी सेवा करता हूँ। तपस्या के नाम पर उनका स्वास्थ्य खराब न हो। इसी प्रकार मैं अतिथियों की भी देख-रेख करता हूँ। वे आश्रम में आ कर एक ही दिन में अपनी आदतें नहीं बदल सकते। इससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जायेगा और वे किसी भी प्रकार की कोई साधना नहीं कर पायेंगे; अतः मैं उनके लिए कड़े नियम, आहार-संयम पर जोर नहीं देता।

यदि उनमें चाय, कॉफी अथवा धूम्रपान जैसी बुरी आदतें भी पड़ी हैं, तो मैं कुछ दिन तक उनको अपने रास्ते पर ही चलने देता हूँ। मानसिक शुद्धता तथा संकल्प-शक्ति का विकास होने पर सभी प्रकार की बुरी आदतें स्वतः ही दूर हो जायेंगी। आश्रम-वातावरण का रहस्यमय प्रभाव भी अपना काम कर दिखाता है। ऐसी स्वतन्त्रता देने पर मन्द बुद्धि का साधक भी आश्रम को अपने घर के समान ही समझता है। वह प्रबल कर्मयोग में सम्मिलित हो कर अपनी सुप्त क्षमताओं को जाग्रत करने में समर्थ बन जाता है। रोगियों के विषय में मैं विशेष उदार हूँ। स्थानीय बाजार में फल न मिलने पर मैं पर्याप्त पैसा खर्च कर दिल्ली आदि स्थानों को किसी आदमी को भेज कर अस्पताल के लिए नारंगी आदि का प्रबन्ध करता हूँ। समय पर किया हुआ काम भावी बड़ी-से-बड़ी आपत्ति को भी दूर कर देता है।

बल का प्रयोग नहीं वरन् पूर्ण स्वतन्त्रता

मैं लोगों को अपने रास्ते पर चलने देता हूँ, उन्हें अपनी रुचि तथा प्रकृति के अनुसार किसी भी क्षेत्र में कुछ समय तक काम करने देता हूँ। इस प्रकार मैं उनमें उचित कार्य-प्रणाली तथा साधना के प्रति स्वाभाविक रुचि का निर्माण करता हूँ। मैं किसी पर भी जोर नहीं डालता। १९३८ में मैंने कुछ पत्र लिखे थे। उनके द्वारा आप मेरी कार्य-प्रणाली को समझ जायेंगे:

"आपको पर्याप्त विश्राम की आवश्यकता है। वर्तमान कार्य के समाप्त होते ही आप विश्राम ले लीजिए। आपको कठिन काम करने की आवश्यकता नहीं। जल्दबाजी नहीं है। जितना समय लगे, उतना लगाइए। किसी भी बात के लिए अनावश्यक रूप से चिन्ता न कीजिए। मैं सारे उत्तरदायित्व तथा गलतियों को अपने ऊपर लेता हूँ। दिव्य जीवन के कार्य के विषय में आपको जरा भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। भविष्य में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत सहायता आप दे सकें, वह आप दे सकते हैं। अब तक आपने बहुत कर दिया है। प्रसन्न तथा सुखी बनिए। क्या मैं आपके व्यय के लिए कुछ रुपये भेज दूँ?"

"एक या दो पुस्तकों को पूरा कर आप ऋषिकेश को लौट सकते हैं। एक सलाह है। आप किसी गाँव में दो सप्ताह तक आराम कीजिए। छपाई के काम को पूरी तरह से बन्द कर दीजिए। फिर काम में संलग्न होइए। यदि आप एक या दो महीने तक ठहरेंगे, तो आप कुछ ठोस कार्य कर सकेंगे। आप ऋषिकेश में एक ही स्थान पर दो वर्ष तक रह सकते हैं। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक हो, तो इस बात पर विचार कीजिए तथा तत्काल ही ऋषिकेश चले जाइए। इसका निर्णय आप स्वयं ही कीजिए। सब-कुछ आपकी सुविधा तथा सम्मति पर निर्भर करता है।"

" मैं आपके नाम को दिव्य जीवन संघ जीवन संघ से सम्बन्धित कर लूँगा। आप जब भी समय मिले, जब भी आपकी इच्छा हो मेरी सहायता कर सकते हैं। आप सदा

"मैं देख रहा हूँ कि आप अपने सच्चे प्रेम के द्वारा मुझको अपना गुलाम बनाते जा रहे हैं। मेरे इस शरीर के लिए जरा भी मोह न रखिए। स्वतन्त्र बनिए। मैंने आपको मुक्त बना दिया है। आपके बाहर रहने पर भी मैं बराबर आपकी सहायता करूँगा। मैं किसी को भी अपने साथ बहुत समय तक कार्य करने नहीं देना चाहता।"

"कार्य से डरिए नहीं। आप अगले वर्ष उत्तरकाशी जा सकते हैं। आप किसी भी काम की देख-भाल न करें; परन्तु अपने कार्य को चालू रखने के लिए योग्य व्यक्तियों को तैयार कर लीजिए। यहाँ पर अच्छे लोग हैं जो कि टाइप के कार्य में संलग्न हैं। कृपया किताब के काम को बन्द न कीजिए। किताबें तो अनवरत निकलती रहनी चाहिए। मुझे निश्चय है कि लोग मेरी किताबों के पीछे अवश्य पड़ेंगे। उनमें व्यावहारिक उपदेश तथा पथ-प्रदर्शन भी दिया गया है।"

काम लेने का तरीका

पहले मैं अपने पास एक विवरणिका रखता था। उसमें दूसरों के द्वारा कराये जाने वाले कार्यों को नोट कर लेता था। मैं इसको चाबुक कहा करता था। अधिक काम के कारण यदि साधक भूल भी जाते, तो मैं उनको तब तक नहीं छोड़ता था जब तक कि वे काम पूरे नहीं हो जाते थे। मैं प्रायः नम्रतापूर्वक उनको याद दिला दिया करता था; परन्तु इसको मैं बहुत ही विनोदपूर्ण तरीके से किया करता था जिसमें प्रेम का पुट होता था। एक काम के लिए बारम्बार याद दिलाने पर भी कोई व्यक्ति मुझसे अप्रसन्न नहीं होता था। तामसिक व्यक्तियों को मैं कड़ी चिट्ठियाँ भी लिखता; परन्तु उनके अन्त में कुछ सहानुभूतिपूर्ण पंक्तियाँ लिख दिया करता था, जिसे पढ़ कर वे सुखी तथा प्रसन्न बन जायें। कुछ पत्र नीचे दिये जाते हैं। सर्वप्रथम मैं उनके स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक प्रगति के बारे में पूछता हूँ, फिर काम के विषय में।

"आप कैसे हैं? क्या आप सदा 'उसके' नाम का स्मरण कर, सर्वत्र 'उसका' भान कर, सर्वत्र 'उसके' दर्शन करते हुए विभिन्न कार्यों के बीच भी दिव्य ज्योति को प्रज्वलित बनाये हुए हैं? कठिन श्रम कीजिए। ध्यान कीजिए। स्वाध्याय कीजिए। अधिक न बोलिए। लोगों के साथ अधिक न मिलिए। समाचारों के लिए उत्सुक न बनिए। शाम को अकेले टहलने जाइए। आध्यात्मिक दैनन्दिनी के पालन में नियमित बनिए। वही आपका निकट का गुरु है। अपने पत्र के ऊपर प्रत्येक बार १० बार 'हरि ॐ मन्त्र लिखिए। यही आत्म-साक्षात्कार के लिए सरल साधना है। अधिक कार्य होने पर भी ईश्वर का स्मरण सदा बनाये रखिए। अपने स्वास्थ्य के विषय में विशेष ध्यान दीजिए। जप, ध्यान तथा स्वाध्याय में नियमित बनिए। अपने स्वभाव तथा आदतों को शनैः शनैः बदल डालिए।

"मैं आशा करता हूँ कि आपका स्वास्थ्य सुन्दर होगा। ब्रह्म-चिन्तन तथा कर्मयोग के साथ-साथ 'साइन्स ऑफ प्राणायाम' का क्या हुआ? क्या वह तैयार है? इस विषय पर आप मौन क्यों हैं? कृपया प्रूफ देखने के लिए उसको मेरे पास भेजिए।"

"मुझे आशा है कि आप सकुशल हैं। अपने काम के साथ राम, कृष्ण अथवा शिव का स्मरण भी करते जाइए। आप योगी तथा ज्ञानी बन जायेंगे। प्रातःकाल कुछ मिनटों तक मूक ध्यान के द्वारा आन्तरिक बल तथा शान्ति प्राप्त कीजिए। मैं बार-बार इस बात पर बल दूँगा : जगत् स्वप्न-जाल तथा मन का जादू है। यह भ्रम है। आप आत्मा हैं। इसका निश्चय कीजिए। शरीर का निषेध कीजिए । महान् प्रयत्न के द्वारा इस भाव में स्थिर बनिए। अनुभव कीजिए-मैं एकम् चिदाकाश, अखण्ड ब्रह्म हूँ, सभी की आत्मा हूँ, सभी का साक्षी हूँ। मैं अकर्ता हूँ। उपद्रवी इन्द्रियों को कुचल डालिए। यही उपनिषद् का सार है। यह अज्ञान को विनष्ट करने के लिए पर्याप्त है। कृपया अपनी दिनचर्या का-कैसे आप चौबीस घण्टों को बिता रहे हैं?— विवरण मेरे पास भेजिए।"

मैं अपने छात्रों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए सदा कार्य करता हूँ तथा कभी उनकी उपेक्षा नहीं करता। यद्यपि उनको ईश्वरीय कार्य के लिए बहुत से काम करने पड़ते हैं, तथापि मैं उनको साधना का महत्त्व तथा जीवन के लक्ष्य और उसकी सार्थकता के विषय में बारम्बार याद दिलाता रहता हूँ।

यहाँ पर दूसरा पत्र है :

"यह जगत् दीर्घ स्वप्न है। आप व्यापक आत्मा हैं। इस एक ही विचार में स्थित रहिए। मुझे बार-बार इस बात पर जोर देना है। इस लेख 'सद्गुरु-मणिमाला' की प्राप्ति की सूचना भेजिए। यदि आप ऐसा न करेंगे, तो बारम्बार याद दिलाने के लिए मैं आपको पत्र लिखता रहूँगा। जब तक उत्तर न मिल जाये, तब तक मैं पत्र लिखता रहूँगा। इस परेशानी से बचने के लिए कहिए कि हाँ, 'सद्गुरु-मणिमाला' मुझे मिल गयी है। इससे आपके समय तथा शक्ति की बचत होगी।"

"मैंने कई बार आपके पास अपने लिखे गये पत्रों को पुस्तक के रूप में संकलित करने के लिए लिखा है। हाँ, अधिक पुनरावृत्तियों को हटाने तथा साधकों के लिए उपयोगी उद्देश्यों का चयन करने की आवश्यकता है। मैंने आपसे कोई भी उत्तर प्राप्त नहीं किया। यदि आप अभी इस काम को नहीं करना चाहते, तो मैं इसकी प्रतीक्षा करूँगा। इससे आपको और अधिक परेशानी नहीं होगी। आप इसको धीरे-धीरे कर सकते हैं।"

प्रसन्नता का सन्देश

मैं चुगली पर विश्वास नहीं करता। निकृष्ट पापी को भी क्षमा कीजिए। प्रत्येक व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक पथ में प्रगति तथा सुधार की आशा है। मैं अपने शिष्यों को मजबूत, वीर तथा प्रसन्न देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वे ईश्वरीय कार्य को सक्रिय रूप से करते रहें। मेरे पत्र मेरे इस भाव को व्यक्त करते हैं :

"व्यर्थ चिन्ता में अपनी शक्ति को न गँवाइए। हमारे काम दिन दूने रात चौगुने बढ़ते जा रहे हैं। हम चुगली एवं आलोचना पर ध्यान दें अथवा यौगिक कार्यों की ओर अग्रसर होते रहें? भूल जाइए। क्षमा कीजिए। क्षमा कीजिए।"

"यदि लोग एक महिला के साथ आपका फोटो अखबार में निकालें, तो मैं विश्वास नहीं करूँगा। यह तो चुगलखोर लोगों की शैतानी है। यदि किसी महिला के साथ आपको स्वयं भी देख लूँ, तो मैं आपको क्षमा कर दूँगा। ये सब मार्ग में भूलें हैं। अक्षम्य अपराध नहीं हैं। मैं कहूँगा कि आप भविष्य में ऐसी गलती न कीजिए। प्रकाश के पथ पर बढ़ते जाइए। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं। मैं आपको प्रसन्न करने के लिए तार भेजना चाहता था। आपको बहुत से भव्य कार्य करने हैं। मैं आपके भावी आध्यात्मिक कार्यों के लिए क्षेत्र तैयार कर रहा हूँ।"

"मेरी कामना है कि आप जैसे बहुत से साधक भारत में पैदा हों जिनसे कि जगत् को सहायता मिले। वीर बनिए। प्रसन्न रहिए। सदा सत्य बोलिए। सर्वत्र सत्य की घोषणा कीजिए। उठिए। कटिबद्ध बनिए। वेदान्त, योग तथा भक्ति का सर्वत्र प्रचार कीजिए। अल्प मात्र भी चिन्ता न कीजिए। जगत् का कोई भी व्यक्ति आपको चोट नहीं पहुँचा सकता। अविचलित रहिए। सत्य पर आश्रित हो कर किसी भी सभा-मंच पर शेर की तरह दहाड़िए। आपके अल्प दोष कुछ समय बाद दूर हो जायेंगे। मलिनताएँ विलीन हो जायेंगी। यही दोषों को दूर करने का धनात्मक तरीका है। बल, आनन्द, शान्ति, सुख, अमृतत्व-यही तो आपका स्वरूप है। इसका निश्चय कीजिए। जीवन के लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार को प्राप्त कीजिए।"

निन्दा के प्रति मेरा रुख

१९३७ में मैंने अपने एक शिष्य के पास निम्नांकित पत्र भेजा था, जिसने पंजाब के किसी एक प्रमुख आश्रम के संस्थापक के नाम पर एक परिपत्र निकाला था :

"मुझे यह मालूम हुआ कि आपने एक छोटा-सा परिपत्र निकाला है जिसमें पंजाब के सभी आश्रमों पर अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग किया गया है। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था। यह मिथ्यापवाद है। बीती को भूल जाइए। यह संन्यासी के लिए शोभन कार्य नहीं है। संकीर्ण-बुद्धि के गृहस्थ ही इस प्रकार के कार्य करेंगे। संन्यास तो विशाल हृदय का परिचायक है। भविष्य में इस तरह का कोई भी कार्य न कीजिए। इससे अप्रत्यक्षतः मुझ पर ही आघात पहुँचता है। आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

मैं शिष्यों से यह अपेक्षा रखता हूँ कि वे अपने कार्य पर ही ध्यान दें। दूसरों की समालोचना करने में वे अपने समय तथा शक्ति का अपव्यय न करें। उनको विशाल दृष्टिकोण तथा सन्तुलित मन रखना चाहिए। उनको चाहिए कि वे सहशीलता, क्षमा आदि गुणों का विकास करें।

मेरा पत्र इस प्रकार है:

"अल्प मात्र भी उद्विग्न होने पर आपके कार्य में त्रुटि पैदा हो जायेगी। मौन रहिए तथा अविच्छिन्न अवधान के साथ काम कीजिए। किसी के साथ कोई सम्बन्ध न रखिए। हर वस्तु का शान्ति के साथ अन्त होना चाहिए। सब-कुछ भूल जाइए। आप अभी भी अत्यन्त दुर्बल हैं। आप शब्दों के जाल द्वारा प्रभावित हो जाते हैं। वज्रवत् दृढ़ बनिए । जैसे को तैसा-यह स्वभाव तो गृहस्थों का होना चाहिए। यह संन्यासियों का स्वभाव नहीं है। यही आध्यात्मिक बल है। यह सन्तुलन है। छोटी-छोटी बातों के द्वारा विचलित होना, महीनों तक चिन्ता करना और व्यर्थ के मामलों में समय तथा शक्ति का अपव्यय करना बुद्धिमानी नहीं है।"

"शान्त रहिए। पुरानी बातों को भूल जाइए। गलतियों के लिए चिन्ता करके आप अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं। इसके द्वारा हमारे काम में बाधा आती है। परिपत्र की शेष प्रतियों को बेचना बन्द कर दीजिए। उन्हें नष्ट कर डालिए। उस आश्रम के संस्थापक मेरे मित्र भी हैं। जिस कार्य से उनको जरा-भी आघात पहुँचे, आप वैसा काम अप्रत्यक्ष रूप से भी न कीजिए। आप जानते हैं, उस परिपत्र में कुछ हानिकारक बातें भी लिखी हुई हैं। सब-कुछ भूल जाइए। शान्ति में विश्राम कीजिए। योग, भक्ति तथा वेदान्त पर लेख लिखिए। दैवी प्रकृति को व्यक्त कीजिए। आप भले ही ठीक हैं; परन्तु आपमें फिर भी दूसरे पक्ष के लोगों के साथ सहानुभूति अवश्य होनी चाहिए। अच्छी सामग्रियों के मिलने पर भी ऐसे पत्र न छपवाइए। सावधान रहिए। जब कि दूसरा पक्ष अधिक व्यथित हो चुका है, तो आप उन्हीं बातों को बार-बार क्यों प्रकाशित करेंगे ? यह संन्यासी का धर्म नहीं है। आप कब तक इस व्यवहार को जारी रखेंगे? मन को शान्त बना कर अपने ध्यान को हमारे प्रकाशनों, साधना तथा अन्य उपयोगी कार्यों में लगाइए।"

समालोचना के ऊपर उठिए

मैं व्यर्थ की बहस में अपना समय नहीं लगाता । मैं शीघ्र कार्य तथा आज्ञाकारिता को चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरे शिष्य समालोचना के द्वारा प्रभावित हों। अतः मेरा यह प्रबल आदेश है:

मामला गम्भीर है। मैं चाहता हूँ कि आप भविष्य में पूर्ण मौन रखें। इसे शीघ्र ही कर डालिए। मैं आपकी बहस नहीं सुनना चाहता। इस मामले को पूरी तरह से बन्द करना चाहिए। मैं पक्षपाती तथा अन्यायी हो सकता हूँ। आप भले ही मुझे उत्तर न दें; परन्तु कृपया शीघ्र ही मेरे आदेशों का पालन कीजिए। संन्यास तो शान्तिपूर्ण रचनात्मक कार्यों के लिए है। और अधिक मैं आपको क्या लिखूँ? आप आत्मा हैं अथवा मन और शरीर हैं? आपने मेरे लेखों को हजारों बार पढ़ा है; परन्तु फिर भी अपना तादात्म्य-सम्बन्ध मन तथा शरीर के साथ कर रहे हैं। लोग आपके मन तथा शरीर की समालोचना कर सकते हैं। आप स्वयं भी अपने शरीर तथा मन को पसन्द नहीं करते। जो लोग आपकी समालोचना करते हैं, वे ही आपके सच्चे मित्र हैं। फिर इसमें उद्विग्न होने की क्या बात है? आप दुर्बल हैं। समालोचना की परवाह न कीजिए। उसकी उपेक्षा कीजिए। भूत की बातों की चिन्ता न कीजिए। यह बुरी आदत है। आप मन की शान्ति को कायम नहीं रख सकते। समालोचना तथा आक्षेपों से आपको ऊपर उठना होगा। जो आपको विष देने की कामना रखता हो, उसके प्रति भी भलाई के कार्य कीजिए । जो आपको जान से मार डालना चाहता हो, उसका भी भला कीजिए। इसको अभ्यास में लाइए।"

"उस दुःखद घटना के द्वारा आपने बहुत-सी बातें सीखी हैं। ईश्वर के महान् विधान में इन अनुभवों की आवश्यकता आपको थी। बुराई से भलाई का उदय होता है। इसके द्वारा आपको बल तथा ज्ञान की प्राप्ति हुई है। अब आप शान्ति से तथा सिंह के समान ही कार्य करें। सुख, आनन्द, शक्ति, बल, महिमा, ऐश्वर्य-ये आपके दैवी जन्माधिकार हैं। ऐसा विचार रखिए कि आप जगत् के सम्राट् हैं। वीरता के साथ कठिनाइयों का सामना कीजिए। आन्तरिक बल को प्राप्त कीजिए। ईश्वर ने आपको विशेष वरदान दिया है। उसने आपको ब्रह्मचारी बनाया तथा सभी प्रकार के बन्धनों से पूरी तरह मुक्त कर दिया। फिर किस बात का पश्चात्ताप और निराशा, शोक अथवा चिन्ता ? इसके लिए तो फिर कोई स्थान रहा नहीं है। मुस्कराइए। प्रसन्नता, शान्ति, ईश्वरीय सेवा, यौगिक कार्य, ज्ञान का प्रसार-ये सब ही अब आपके अंग हैं। मैं सदा आपकी सेवा करने को आपके चरणों पर पड़ा हूँ। निश्चय रखिए। निश्चय रखिए। आनन्द में उछलिए। भाव में नृत्य कीजिए। सिंह की तरह से ही चलिए। अपने निकट के सभी लोगों में सुख, आनन्द, बल तथा शक्ति का संचार कीजिए।"

दृढ़ता तथा कृतज्ञता

शिष्यों के द्वारा दिव्य कार्य की ओर किये गये सेवा-कार्य को मैं कभी नहीं भूल सकता । यद्यपि वे कुछ कारणों से मुझसे दूर चले जाते हैं, फिर भी मैं उनके द्वारा किये गये कामों को नहीं भूल पाता। वे मेरे हृदय में वास करते हैं। पत्र इस प्रकार है :

"अपने मत को कभी न बदलिए। मैं आपका सेवक, शुभेच्छु, मित्र तथा बन्धु हूँ। यद्यपि आप मुझको छोड़ दें, तथापि मैं आपका त्याग नहीं कर सकता। आप सदा से ही मेरे प्रिय रहे हैं। मैं किसी भी व्यक्ति के प्रति कठोर शब्द नहीं कह सकता । यदि कोई व्यक्ति कठोर शब्द बोलता भी है, तो मैं उसके प्रति दया-भाव का ही प्रदर्शन करता हूँ। मैं सदा ही उसका सुधार करना चाहता हूँ। आप इसका अनुभव कर सकते हैं। आपने इसका अनुभव किया भी होगा। मैं ईश्वर का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिसने कम-से-कम एक किरण तो मुझको प्रदान की है। ईश्वर ने ही मुझे यह गुण दिया है। यह सब उसकी ही कृपा है।"

"अब सम्पूर्ण विषय स्पष्ट है। उसकी करुणा तथा कृपा का भान कीजिए। मैं स्वयं पोस्ट आफिस में जा कर इस पत्र को डाल रहा हूँ। वर्षों तक साथ रहने पर भी मनुष्य के मन को समझना अत्यन्त कठिन काम है। अपने मन का अध्ययन करना बहुत कठिन काम है। ईश्वर ही जानता है कि वास्तविक अपराधी कौन है? आप निकट- सम्बन्ध के द्वारा मुझको अच्छी तरह से जानते हैं। यह एक बुद्धिमानी की बात होगी कि आप उस नकली पत्र के विषय में व्यक्तिगत रूप से बात कर लेते, क्योंकि उसके नकली होने की सम्भावना आपको लिफाफा तथा हस्ताक्षर को देखते ही हो गयी होगी। यह एक अनावश्यक झमेला है आपके लिए, मेरे लिए तथा सबके लिए। इस

प्रकार की बेकार की बातों में मन को लगाने के लिए न तो आपके पास ही समय है और न मेरे पास ही। क्यों इस प्रकार के मामले में शक्ति तथा समय का अपव्यय किया जाये? हमें चाहिए कि जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रभु की सेवा तथा साधना में ही लगायें।"

"आपमें कम-से-कम इतना तो दृढ़ विश्वास होना चाहिए था कि मैं आपके पास कभी भी इस प्रकार का पत्र नहीं भेज सकता था। यद्यपि आपने यहाँ पर भूल की है, फिर भी कोई बात नहीं है। मनुष्य भूलों के द्वारा ज्ञान तथा अनुभवों को प्राप्त करता है। इनके द्वारा ही वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है।"

"यदि हजारों व्यक्ति भी आपकी निन्दा मेरे पास करेंगे तो मैं उनकी नहीं सुनूँगा। आप मेरे लिए, भारत के लिए तथा जगत् के लिए गौरव हैं।"

आप बुराई से बच नहीं सकते

"यह जगत् विचित्र है। यहाँ हमें बहुत से पाठ पढ़ने हैं। प्रभु ईसा के शिष्यों ने ही उनको धोखा दिया। उन्नति के पथ पर साधकों को हर समय पर बाधाओं तथा कठिनाइयों का सामना करना होता है। हमें अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना होगा। छोटी-छोटी वस्तुओं के द्वारा उद्विग्न न बनें। प्रसन्न रहें। वीरता के साथ आगे की ओर चलें। ऐसा अनुभव करें कि कुछ भी तो नहीं हुआ है। छोटी-छोटी वस्तुओं की चिन्ता न करें। आपको बहुत से महान् कार्य करने हैं। प्रकृति विविध तरीकों के द्वारा आपको तैयार कर रही है। इसका भान कीजिए। ईश्वर के प्रति कृतज्ञ बनिए।"

"ये घटनाएँ घटी हैं, लेकिन फिर भी मैं श्री 'क,' श्री 'ख' अथवा श्री 'ग' को नहीं छोड़ सकता। सभी लोग गलतियों तथा भूलों के द्वारा उन्नति प्राप्त करते हैं। आपको भूत की बातों को पूर्णतः भूल जाना होगा। मैं आपके लिए ब्रह्मानन्दाश्रम में व्यवस्था कर दूँगा। आपकी भिक्षा का भी पृथक् ही प्रबन्ध रहेगा। आपको किसी से भी मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप ईश्वरीय योजना के लिए कुछ काम करेंगे । आप जगत् के किसी भी भाग से बुरे मनुष्यों को पृथक् नहीं कर सकते । कहीं भी आप जायें, आपको उनके साथ रहना ही होगा। आत्म-भाव रखिए। इसके द्वारा परिस्थितियों में परिवर्तन आ सकता है।"

"आपको उन सभी के प्रति प्रेम करना चाहिए जो आपका अनिष्ट करना चाहते हैं। यही संन्यास है। संन्यासी वही है जो कि यह भान करे कि 'मैं शरीर नहीं हूँ।' हमें सदा ऐसे लोगों के बीच में ही रहना चाहिए जो हमको विनष्ट करना चाहते हों। प्रतिकूल वातावरण में रह कर भी हमको काम करने तथा ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिए। तभी हमारी उन्नति हो सकती है। तभी हम अपने मन को ज्ञानी के समान अविचल रख सकेंगे। इसके लिए आपके पास प्रबल आन्तरिक बल तथा श्रद्धा होनी चाहिए।"

शिष्यों के बीच झगड़े के प्रति मेरा रुख

मेरे एक साधक ने मद्रास में रहने वाले एक कार्यकर्ता के पास एक नकली चिट्ठी भेजी जो मेरे नाम की थी। इसके द्वारा यह व्यक्ति बड़ा अशान्त हो गया। यहाँ मेरा दिया पत्र दिया जा रहा है, जिसके द्वारा मैं शान्ति तथा सन्मति की स्थापना करना चाहता हूँ। ८ सितम्बर, १९३७ को यह पत्र लिखा गया था। इससे मेरा रुख, स्वभाव तथा कार्य करने के तरीके का स्पष्ट ज्ञान आपको हो जायेगा। सारे आश्रम पर भी इसका कुप्रभाव क्यों न पहुँचे, मैं फिर भी आपको बता देना चाहता हूँ कि मैं इस सिद्धान्त पर अटल रहता हूँ :

"मैं स्वप्न में भी किसी के हृदय को चोट नहीं पहुँचा सकता। मैं सभी से समान

रूप से प्रेम करता हूँ, यहाँ तक कि निकृष्ट मनुष्य से भी प्रेम करता हूँ। जो मेरे जीवन को भी लेना चाहता हो, उसको भी मैं प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। मेरे शिष्य मेरा त्याग कर सकते हैं; परन्तु मैं उनका कदापि त्याग नहीं कर सकता। मैं साधकों में आध्यात्मिक गोंद 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र तथा प्रार्थनाओं के द्वारा एकता स्थापित करता हूँ।" यहाँ उपर्युक्त पत्र का पूर्ण विवरण है :

"प्रिय स्वामी जी,

"प्रणाम । मैंने ऐसा कोई पत्र आपके पास नहीं लिखा है। यह तो एक जाली पत्र है। इसके हस्ताक्षर का दूसरे पत्रों के हस्ताक्षर के साथ सूक्ष्मता के साथ मिलान कीजिए। आप चोर को पहचान जायेंगे। कृपया उस पत्र को रजिस्टर्ड पोस्ट के द्वारा मेरे पास अवलोकनार्थ भेजने की कृपा करें। वह टाइप किया हुआ पत्र होगा। क्या आप यह पता लगा सकते हैं कि वह पत्र हमारी मशीन में टाइप किया हुआ है अथवा किसी अन्य मशीन के द्वारा टाइप किया गया है? क्या किसी प्रकार इस बात का ज्ञान हो सकता है कि हमारे किस ग्रुप ने यह कार्य किया है?

"कुछ दिन पहले यहाँ पर भी कुछ गड़बड़ी मची थी। स्वामी श्री 'ब' ने कुछ ऊधम किया था; अतः मैंने उनको आश्रम को त्याग देने के लिए कहा। उनके साथ स्वामी 'अ' तथा स्वामी 'र' जो कि उनके मित्र थे, ने भी आश्रम छोड़ दिया। वे सभी अब ऋषिकेश में हैं। उन्होंने मेरे-आपके बीच विद्वेष को पैदा कर अपने शत्रु श्री 'य' को आश्रम से निकलवाने की कोशिश की है। इसके लिए उन लोगों ने यह कुत्सित योजना बनायी है। मेरे विचार से यह उनकी ही योजना है। श्री 'ख' इस आश्रम के महान् विरोधी हैं तथा किसी ने श्री 'न' के बिछावन में आग लगा दी है।

"आपको शीघ्र ही समझ लेना चाहिए था कि स्वामी जी कदापि ऐसा कड़ा पत्र नहीं लिख सकते। यह तो सम्भवतः दूसरों की शैतानी है। सब-कुछ ठीक हो जायेगा। आप किसी प्रकार भी चिन्तित न बनें। यहाँ आने पर आप ब्रह्मानन्दाश्रम में अलग से रह सकते हैं। आपको हमारे लंगर से भोजन लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं आपके भोजन के लिए कुछ विशेष प्रबन्ध कर दूँगा। काम के समाप्त होते ही आप शीघ्र ही यहाँ पर आ जाइए। आपको वहाँ पर एक क्षण भी ठहरने की आवश्यकता नहीं है। उस जाली पत्र के विषय में जरा भी चिन्ता न कीजिए। यह तो कुछ चुगलखोरों की शैतानी है। जो बुरा कार्य करेगा, उसको उसका फल भी अवश्य भोगना होगा। कर्म का नियम अटल है। मैं आपको तार भेजना चाहता था- 'चिन्ता न कीजिए। यह जाली है। यह किसी की शैतानी है। पत्र लिख रहा हूँ।' तब मैंने सोचा कि विस्तृत पत्र के द्वारा इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण हो सकेगा।"

एक ही विषय को बार-बार उकसाने से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता

मैं साधारणतः शिकायतों को नहीं सुनता। विभिन्न व्यक्तियों की बहसों का कभी भी अन्त न होगा। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि पूछताछ के द्वारा परिस्थिति और भी अधिक बिगड़ जाती है। 'योजना' से सम्बन्धित लोगों की सन्तुष्टि के लिए मैंने उस विषय में जाँच-पड़ताल की तथा निम्नांकित पत्र में अपना मत प्रदान किया। मैं परिस्थिति के सुधार के लिए समय की प्रतीक्षा करता हूँ। पत्र इस प्रकार है :

"मैंने आज प्रातः सभी आश्रमवासियों को बुला कर इस विषय की जाँच-पड़ताल की है; परन्तु कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकल सका। अपराधियों को खोज निकालने के लिए मुझे कोई दूरदर्शन की सिद्धि प्राप्त नहीं है। आप स्वयं भी दोषी का पता लगा सकते हैं। क्या टाइपिंग के स्टाइल से आप वास्तविक मनुष्य का पता लगा सकते हैं? यदि आप निश्चय के साथ किसी का पता भी लगा लें, तो वंह स्वीकार करेगा ही नहीं। अब आप जरा भी चिन्ता न कीजिए। प्रसन्न रहिए। सब-कुछ मिथ्या है; द्वेष के कारण ही यह शैतानी की गयी है। अपराधियों का पता लगाना बहुत कठिन है। अपने मन की अशान्ति के कारण आपको वहाँ का कार्य छोड़ कर यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। शान्त रहिए। पर्याप्त काम कीजिए। मन की सारी किरणों को बटोर कर शान्त हो जाइए। भूत तो भूल जाइए । जितना सम्भव हो, उतना ही काम कीजिए। काम में तल्लीन हो जाइए। अशान्त न बनिए । ये छोटे-छोटे उपद्रव आपको मजबूत बनाने के लिए, मुझको मजबूत बनाने के लिए रास्ते में आया करते हैं। हमें अशान्त नहीं होना चाहिए। ये सारी घटनाएँ हमें सफल बनाती हैं। यह आपकी उन्नति के लिए ही है।

"एक बात का मैंने पता लगाया है। आप शीघ्र ही अशान्त हो जाते हैं। आपका पत्र पढ़ते ही मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी समझ में यह नहीं आया कि आपने किसको पत्र लिखा है; क्योंकि मैंने वैसा कभी भी लिखा ही नहीं। आपको यह जान लेना चाहिए था कि यह किसी दूसरे का कार्य है। यदि ऐसा भी मान लीजिए कि मैंने ही वैसा पत्र लिख दिया, तो वह आपके अथवा किसी के कल्याण के लिए ही होगा। यहाँ आप विफल रहे। मैं किसी की भावना पर-उस व्यक्ति की भावना पर भी नहीं, जो मुझे हानि पहुँचा रहा हो-स्वप्न में भी आघात नहीं पहुँचा सकता। मैं इस सद्‌गुण का विकास कर रहा हूँ। सदा इसे पक्का जानिए, चाहे ऐसी घटना फिर भविष्य में भी क्यों न घटे।"

सफलता का मार्ग

जब मैं पुस्तक लिखना प्रारम्भ करता हूँ, तो उसे किसी-न-किसी तरह समाप्त कर ही डालता हूँ। किसी पुस्तक को अध्ययन के लिए प्रारम्भ करने पर उसे समाप्त करके ही अन्य पुस्तक को ग्रहण करता हूँ। मैं कभी भी किसी काम को अधूरा नहीं छोड़ता। मैं उस विषय पर मन को एकाग्र करता हूँ, बिना किसी विक्षेप के गम्भीर विचार करता हूँ। मैं दृढ़, स्थिर तथा अविचल रहता हूँ। मुझे कार्य के प्रति प्रबल लगन है। मैं अपने उद्देश्य के प्रति संलग्नता तथा गम्भीरता रखता हूँ।

मनुष्य के स्वभाव को कैसे बदला जाये ?

दुश्चरित्रों का सम्मान कीजिए। सर्वप्रथम दुष्टों की सेवा कीजिए। उनके साथ भावी सन्त के समान अथवा सन्त मान कर ही व्यवहार कीजिए। स्वयं अपने हृदय की शुद्धि का तथा उनको भी उन्नत बनाने का यही मार्ग है। मैं ऐसे लोगों की सावधानीपूर्वक सेवा करते हुए विशेष आनन्द प्राप्त करता हूँ। मैं सदा अपने निकट ऐसे लोगों को रखता हूँ जो मुझे गाली देते हैं, मेरे दोष निकालते हैं, मुझे अपमानित करते तथा मुझ पर चोट पहुँचाने का भी प्रयास करते हैं। मैं उनकी सेवा करना, उन्हें शिक्षित बनाना तथा उन्हें परिवर्तित करना चाहता हूँ। मैं उन्हें बहुत ही आदरपूर्ण शब्दों से पुकारता हूँ। दुष्ट तथा चोर को जनता के सामने सन्त कह कर पुकारिए, वह अपने बुरे कार्यों के प्रति लज्जित होगा। शीघ्र क्रोधित होने वाले मनुष्य के प्रति बारम्बार कहिए -"यह तो शान्तमूर्ति है।' वह क्रोध करने में लज्जा का अनुभव करेगा। आलसी व्यक्ति को 'कर्मयोग वीर' कहिए, वह अपने आलस्य को दूर कर सेवा में संलग्न हो जायेगा। यही मेरा तरीका है। यह स्तुति आपके हृदय के अन्तरतम से निकलनी चाहिए। अपने हर शब्द में आपको आत्मबल का प्रयोग करना चाहिए। आपको सच्चाई के साथ यह भावना रखनी चाहिए कि इस प्रतीयमान दुर्गुण के पीछे मनुष्य में ज्योतिर्मय सद्‌गुण छिपा हुआ है। तब आप दोनों का उत्थान होगा।

गुण्डों के प्रति मेरा विचार

अच्छे लोग तो धार्मिक हैं ही, मुझे तो गुण्डों को भी सुधारना है। यही मेरा विशेष कार्य है। गुण्डा ऋणात्मक धार्मिक है। वह धार्मिकों को महिमान्वित करता है। गुण्डा भी भगवान् कृष्ण है। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं: "द्यूतं छलयतामस्मि - मैं ठगों के लिए जूआ हूँ।" रुद्री में लिखा है : "तस्कराणां पतये नमः चोरों के मालिक को नमस्कार!" मैं आश्रम में सभी प्रकार के साधकों को रखता हूँ। जगत् मुझे चोरों तथा गुण्डों का गुरु कह कर पुकारता है। ईश्वरीय कार्य की जय हो! इस पवित्र केन्द्र के आध्यात्मिक स्पन्दन उन्हें दिव्य योगियों तथा सन्तों में बदल डालें!

अभिमान नष्ट कीजिए

सत्त्व, रजस् तथा तमस् के फन्दों में पड़ कर साधक मनसातीत धाम में विचरण करने में असमर्थ रह जाता है। सात्त्विक फन्दा बहुत ही सूक्ष्म है तथा इसको पहचानना एवं इसका विवेक करना बहुत कठिन है। संन्यास के साथ ही संन्यास-अभिमान उत्पन्न हो जाता है। इससे दूसरों को अपेक्षा वह अधिक ऊँची उड़ान को भले प्राप्त हो, परन्तु वह बन्धन में ही है। त्याग के साथ त्याग- अभिमान आ जाता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म; परन्तु बहुत ही खतरनाक है। इसको दूर करना तो प्रायः असम्भव ही है। सेवा-अभिमान के विषय में भी यही बात है। अभिमान के अनेक रूप हैं। संन्यास, त्याग तथा सेवा के अभिमान भी इसके रूप बन जाते हैं। जो साधक आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है, उसे अभिमान के सूक्ष्म रूपों को भी सावधानीपूर्वक दूर हटाना होगा।

आदर्श गुरु

मैं सदा जिज्ञासु विद्यार्थी हूँ।
मैं गुरु नहीं,
परन्तु ईश्वर ने मुझे गुरु बना डाला है।
साधकों ने मुझे गुरु बना डाला है।
मैं अपने छात्रों को भी शीघ्र ही गुरु बना डालता हूँ,
मैं ऐसा गुरु हूँ।
'महाराज', 'स्वामी जी', 'भगवन्', 'नारायण' इत्यादि
आदरसूचक शब्दों से मैं उनका सम्मान करता हूँ।
मैं उनके साथ बराबरी का व्यवहार करता हूँ,
मैं उन्हें आसन देता हूँ।
मैं ऐसा गुरु हूँ।
मैं अपने जीवन से ही उन्हें शिक्षा देता हूँ,
मैं उन्हें महन्त तथा मानव-सेवक बनाता हूँ।
अध्यक्ष, वक्ता, लेखक, स्वामी तथा योगी,
आध्यात्मिक संस्थाओं का संस्थापक, कवि तथा
पत्रकार, प्रचारक, सुधारक, स्वास्थ्य तथा योग में दक्ष,
टाइपिस्ट, योग-सम्राट्, आत्म-सम्राट्, कर्मयोगी-वीर,
भक्ति-भूषण, साधना-रत्न बना डालता हूँ।

सत्य के सभी साधकों के लिए मैं ऐसा गुरु हूँ।

आओ, आओ, मेरे मित्रो !

मेरा आह्वान प्रबल है। इसने अनेक जीवनों को परिवर्तित कर दिया है। इस बहुमूल्य जीवन को न खोओ।

ताश तथा गप में समय न गँवाओ । गरमागरम बहस तथा विवादों को बन्द करो। सारे विषय-केन्द्रों को नष्ट करो। विलास की कामना का त्याग करो।

काम को जला डालो।

अभिमान के किले को नष्ट कर दो।

मित्रो! जल्दी करो, जल्दी करो।

अहर्निश भगवान् के नाम का गायन करो।

आनन्द-सागर में गोता लगाओ ।

अपने अन्दर आत्मा के असीम साम्राज्य में प्रवेश करो।

आओ, आओ, मेरे मित्रो, गोता लगाओ।

शीघ्रता करो, विलम्ब न करो।

ज्ञान तथा सुख का उपभोग करो।

एकादश अध्याय

आध्यात्मिक मार्ग पर व्यावहारिक संकेत

डाक द्वारा साधकों को उपदेश

साधकों को डाक के द्वारा प्रशिक्षित करने के लिए मेरे पास योग के छपे-छपाये पाठ नहीं हैं। मैं साधारणतः छात्रों की रुचि के अनुसार पुस्तक भेज दिया करता हूँ। मैं पत्र-व्यवहार के द्वारा शिक्षा देता हूँ। शिक्षा क्रमबद्ध दी जाती है। साधक अपने दैनिक कार्यक्रम, स्वास्थ्य तथा उन्नति के विषय में लिखते हैं। वे आध्यात्मिक दैनन्दिनी को भरते समय तथा मेरे 'बीस आध्यात्मिक नियम' का पालन करते हैं। मैं अपने परामर्श के द्वारा उनकी सहायता करता तथा उनके कष्टों एवं बाधाओं को दूर करता हूँ। मैं शान्ति के विचार-प्रवाहों को भेजता हूँ।

वैयक्तिक अवधान के द्वारा सारे देशों में सहस्रों व्यक्तियों ने पर्याप्त उन्नति प्राप्त की है। उच्च प्रशिक्षण के लिए वे आश्रम में आ कर कुछ महीने या सप्ताह तक मेरे साथ रहते तथा दीक्षा ग्रहण करते हैं।

वे मेरी वैयक्तिक देख-रेख को पसन्द करते हैं। मैं किसी से भी योग-प्रशिक्षण के लिए शुल्क नहीं लेता और न तो आश्रम में उनकी व्यवस्था के लिए ही रुपये की माँग करता हूँ। प्राय: सभी साधक जो मेरे पास आते हैं, मुझे उदारतापूर्वक रुपये देते हैं, अथवा संस्था की उन्नति के लिए तथा ज्ञान-प्रचार-कार्य में उसके सहायतार्थ धर्मार्थ दान देते हैं। इन सुकर्मों के द्वारा उन्हें चित्त-शुद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायता मिलती है।

इन पृष्ठों में मेरे पत्रों के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं, जिनमें मेरे पथ-प्रदर्शन के तरीकों पर प्रकाश प्राप्त होगा। मैं सभी के लिए नैतिक एवं धार्मिक आदशों पर बल देता हूँ। मैं सभी के लिए दिव्य जीवन के मार्ग को प्रशस्त करता हूँ।

शान्ति का मार्ग

स्वर्गाश्रम
१६ अगस्त, १९३०

प्रिय भाई,

आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। आपको बहुत धन्यवाद । ४ बजे प्रातः उठिए। ताले-कुंजी से बन्द एक ध्यान- गृह रखिए। किसी को भी उसमें प्रवेश. न करने दीजिए। गायत्री-चित्र, गीता इत्यादि कमरे में रखिए। गायत्री पर ध्यान कीजिए। अर्थ के साथ गायत्री मन्त्र का जप कीजिए। आँखों को बन्द कर दोनों भौहों के बीच के स्थान 'त्रिकुटी' पर ध्यान जमाइए। पद्मासन पर बैठिए। लगातार दो घण्टे तक बैठने का अभ्यास कीजिए। गीता का नियमित स्वाध्याय कीजिए। प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। क्रोध का दमन कीजिए। गरीबों, बीमारों तथा साधुओं की सेवा कीजिए। कुछ रुपये दान में लगाइए। इससे आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा। सांसारिक व्यक्तियों का साथ न कीजिए। सेवा कीजिए, प्रेम कीजिए, हर व्यक्ति का आदर कीजिए। निन्दा, पिशुनता, परदोष-दर्शन, चुगलखोरी आदि का त्याग कीजिए। नम्र बनिए। मधुर बनिए। आप शान्ति में प्रवेश करेंगे। नित्य-प्रति एक घण्टे तक और छुट्टियों में तीन घण्टे तक मौन रखिए।

आपका सुहृद,

स्वामी शिवानन्द

ज्ञान के पिपासु बनिए

साधकों को भावुकता तथा आवेश के वशीभूत हो कर संन्यास का मार्ग ग्रहण नहीं करना चाहिए। संसार में रहते हुए भी आध्यात्मिक जीवन के लिए ज्वलन्त मुमुक्षुत्व का विकास कीजिए।

स्वर्गाश्रम, कुटीर
२२ २९ अगस्त, १९३०

ॐ सच्चिदानन्द,

आप आत्मा हैं। आप अमर हैं। निर्भय बनिए। अपनी आत्मा की महिमा का निश्चय कीजिए। मन तथा सांसारिक वस्तुओं के धोखे से अपने-आपको मुक्त बना डालिए।

मेरे प्रिय योगी, ईश्वर आपको आशीर्वाद दे! आपके २१ तारीख के पत्र को पढ़ कर मुझे असीम आनन्द हुआ। आप आध्यात्मिक संस्कारों से युक्त हैं। उनका पोषण कीजिए। उनकी अभिवृद्धि होगी।

मेरे पास न आइए

यदि आप निभा सकें और आपको दृढ़ निश्चय हो कि आप समाज के लिए विनाशकारी नहीं बन जायेंगे और यदि आप काम पर नियन्त्रण रख सकें, तो जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारी (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) रहिए। आप धनी नहीं हैं, फिर परिवार तथा बच्चों का पालन-पोषण कैसे करेंगे? इससे आपकी आध्यात्मिक उन्नति रुक जायेगी।

केवल यौवन के जोश से काम नहीं चलेगा। आध्यात्मिक मार्ग में केवल आवेश से लाभ नहीं होता। यह फूलों का मार्ग नहीं है। यह काँटों, बिच्छुओं तथा सर्पों से भरा हुआ मार्ग है। मार्ग कण्टकाकीर्ण, ढालुआँ तथा अत्यन्त दुर्गम है; परन्तु दृढ़ संकल्प वाले मनुष्यों के लिए यह सुगम है। मुझे अवश्य साक्षात्कार करना है। इसके लिए मैं अपना जीवन भी उत्सर्ग कर दूँगा। ज्ञान के लिए ऐसी ज्वलन्त पिपासा चाहिए।

शनैः-शनैः इन सात्त्विक गुणों का विकास कीजिए-क्रोध को रोकने के लिए धैर्य, लोभ पर नियन्त्रण के लिए सन्तोष, अभिमान, दर्प को नष्ट करने के लिए सेवा। नम्रता, सत्यवादिता, तितिक्षा (सर्दी, गरमी तथा दुःख सहना) का विकास कीजिए। सभी के प्रति सदय बनिए । कभी भी चिड़चिड़े तथा आवेशपूर्ण न बनिए । आध्यात्मिक उन्नति की दैनन्दिनी भरिए। हर वस्तु को उसमें लिखिए। उन्नत व्यक्तियों के साथ रहिए। रामकृष्ण मिशन में जा कर महात्माओं की सेवी कीजिए। उत्साह, प्रेम तथा गम्भीर सहानुभूति के साथ बड़ों की सेवा कीजिए। अपनी शंकाओं का स्पष्टीकरण करवाइए।

आपके लिए शान्ति तथा मुक्ति की कामना में-. . . . .

आपका
शिवानन्द

हरि ॐ तत्सत्
ॐ शान्ति !

योग तथा वेदान्त-साधना की एक प्रति रख लीजिए।
भविष्य में उत्तर-प्राप्ति के लिए जवाबी कार्ड या लिफाफा भेजिए।

संसार के त्याग में जल्दबाजी न कीजिए

C/o विजयनगरम् हाउस
कैम्प/कलकत्ता
१२ दिसम्बर, १९३०

ॐ सच्चिदानन्द,

कुछ समय के लिए ऋषिकेश आइए। आप निश्चय ही एकान्त तथा आध्यात्मिक स्पन्दनों का सुख भोगेंगे। मेरा नाम कहिए, लोग आपकी व्यवस्था तथा सेवा करेंगे। श्री स्वामी अद्वैतानन्द, श्री स्वामी तपोवन जी महाराज, श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज के दर्शन कीजिए। वे सभी मेरे निकट-सम्पर्क में हैं-वे सभी उन्नत महात्मा है।

जगत् का त्याग करने में जल्दबाजी न कीजिए। बहुत से सात्त्विक गुणों को विकसित करने के लिए जगत् सुन्दर क्षेत्र है। जो लोग लाभ उठाना चाहते हैं, उनके लिए जगत् सर्वोत्तम गुरु है। और कुछ दिनों तक वहीं रहिए। कमाइए तथा उपभोग कीजिए। वैराग्य भोग से ही उत्पन्न होता है। तभी यह प्रबल, स्थिर तथा तीव्र रहेगा। विवाह न कीजिए; यह दूसरी बात है। जगत् मरक नहीं है। अहंकार तथा राग-द्वेष के मर जाने पर यह आनन्द मात्र ही है। मानसिक दृष्टिकोण को बदल डालिए। आइए, इन सभी स्थानों तथा महात्माओं के दर्शन कीजिए। आपको प्रेरणा प्राप्त होगी।

वहाँ रह कर दिव्य जीवन व्यतीत कीजिए। आध्यात्मिक मार्ग फूलों का मार्ग नहीं है। यह तो शूलों से भरा हुआ है। अधिकारी बनिए। जप तथा ध्यान के द्वारा शुद्धता तथा आध्यात्मिक बल प्राप्त कीजिए। प्रसन्न रहिए। आपको कैवल्य-मोक्ष की प्राप्ति हो!

स्वामी शिवानन्द

कार्य करने से पहले विचार कर लीजिए

पिछले दो पत्रों से आपको पता चल गया होगा कि मैं जल्दबाजी के निर्णय के विरुद्ध अपने साधकों को सावधान बनाता हूँ; परन्तु जब साधक को प्रबल वैराग्य तथा अविचलित संकल्प से सम्पन्न देखता हूँ, तो मैं हर्ष से प्रफुल्लित हो जाता हूँ। उन दिनों जब मैं अकेले रहता तथा मेरा अपना कोई आश्रम न था, मैं अपने पास किसी शिष्य को रखने में हिचकता था। मैं नहीं चाहता था कि कोई मेरे पास आ कर रहे। अतः उपर्युक्त साधक के मामले में जब मैंने देखा कि उसमें प्रबल मुमुक्षुत्व तथा अविचल संकल्प है, तब मैंने विचार किया कि किसी आश्रम में रह कर सेवा-कार्य करना उसके लिए अच्छा रहेगा। इस तरह मैं साधकों के लाभ की ही बात सोचता था। उन्हें शिष्य बना कर उससे सेवा लेने की कामना नहीं रखता था। इसके साथ ही दूसरी धार्मिक संस्थाओं की उन्नति की कामना रखता था।

ॐ प्रिय आत्मन्,

ईश्वर तथा धर्म के प्रति आपकी निष्ठा निश्चय ही संसार से आपको ऊपर उठायेगी। ईश्वर आपको आध्यात्मिक बल तथा शक्ति प्रदान करे, जिससे आप ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कर सकें!

कृपया श्री अरविन्द आश्रम या रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित हो जाइए। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वहाँ आप पर्याप्त उन्नति कर सकेंगे। कुछ वर्षों तक आश्रम में ही रहिए। आप यहाँ मिलने के लिए आ सकते हैं, स्थायी निवास के लिए नहीं। छलाँग मारने से पहले देख लीजिए। विचार कीजिए। संसार सर्वोत्तम गुरु है। उससे आपको बहुत कुछ सीखना है। जल्दबाजी न कीजिए। हिमालय की गुहाओं को न जाइए । जवानी का जोश अधिक सहायता नहीं पहुँचा सकेगा। यह मार्ग कठिन तथा कष्ट-साध्य है। आपको मालूम भी न होगा कि वहाँ पर समय का उपयोग कैसे किया जाये।

मैं तो एक साधारण-सा साधु हूँ। मैं आपको अधिक सहायता भी नहीं दे सकता। मैं शिष्य नहीं बनाता । जीवन-पर्यन्त मैं आपका सच्चा मित्र हो सकता हूँ। मैं अधिक समय तक किसी को अपने साथ नहीं रख सकता। कुछ महीनों तक प्रशिक्षण दे कर साधकों को काशी या उत्तरकाशी जा कर ध्यान करने का आदेश देता हूँ।

मैं पुनः कहता हूँ कि किसी ऐसे अच्छे आश्रम में सम्मिलित हो जाइए जहाँ आपको आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो सके। वहीं डटे रहिए। कठिनाइयों को सहन कीजिए। इसके फल-स्वरूप आप अमृतत्व तथा असीम आनन्द प्राप्त करेंगे।

आपका निजस्वरूप,
स्वामी शिवानन्द

प्रसन्न रहिए। स्वतन्त्र, साहसी तथा निर्भय बनिए। आप अमृत-पुत्र हैं। हरि ॐ तत्सत्। धैर्य का विकास कीजिए। सत्य बोलिए। क्रोध का दमन कीजिए। तितिक्षा का विकास कीजिए। सेवा कीजिए। प्रेम कीजिए, दीजिए। दूसरों को क्षमा कीजिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुमूल्य उपदेश

यहाँ कुछ बहुमूल्य उपदेश सूत्र-रूप में दिये जा रहे हैं:

स्वर्गाश्रम
३ अक्तूबर, १९३०

(क) भयभीत न बनिए ।
(ख) शोक न कीजिए।

आप जड़ शरीर नहीं हैं।

आप सच्चिदानन्द-रूप अमृत आत्मा हैं।

कृपया मेरी पुस्तक 'मन : रहस्य और निग्रह' पढ़िए। ध्यान में उन्नति के लिए आप पर्याप्त व्यावहारिक उपदेश प्राप्त करेंगे। जितना सम्भव हो, रुपये बचाइए।

आजकल संन्यासियों के लिए भी रुपये की आवश्यकता है; क्योंकि गृहस्थों से सहायता नहीं मिलती। इन दोनों को-स्वाध्याय तथा ध्यान को अपना प्रमुख विहार-केन्द्र बना लीजिए। अन्य सभी बाह्य विहार-केन्द्रों से दूर रहिए।

(१) खोजिए। समझिए। साक्षात्कार कीजिए।

(२) विषयों का विश्लेषण कीजिए। उनके वास्तविक स्वभाव का साक्षात्कार कीजिए तथा उनका परित्याग कीजिए ।

(३) स्वयं को जानिए तथा मुक्त हो जाइए ।

(४) सदा आत्म-संस्थित रहिए।

(५) प्रार्थना कीजिए तथा धार्मिक बनिए ।

(६) मुमुक्षुत्व रखिए तथा ईश्वरीय कृपा प्राप्त कीजिए।

(७) (शरीर का) निषेध तथा (ब्रह्म का) निश्चय कीजिए।

(८) 'तत्त्वमसि' - इसे कभी न भूलिए।

स्वामी शिवानन्द

प्रसुप्त ईश्वरीय स्वरूप का प्रस्फुटन कीजिए

मेरी सम्मति के अनुसार साधक रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित हो गया और फिर भी उसने मेरे साथ सम्पर्क बनाये रखा। मैं सभी आश्रमों को अपना ही समझता हूँ तथा किसी व्यक्ति पर, जो मेरे पास पूर्ण पथ-प्रदर्शन के ही लिए आता है, एकाधिकार की भावना नहीं रखता। मैं अपने पथ-प्रदर्शन को बन्द नहीं करता :

स्वर्गाश्रम
ऋषिकेश

आदरणीय बन्धु,

ॐ नमो नारायणाय । ईश्वर-आशीर्वाद !

मैं लम्बी कैलास-यात्रा से लौट कर आया हूँ। मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप रामकृष्ण मिशन में शामिल हो चुके हैं। हार्दिक बधाई। आश्रम से चिपके रहिए। यही भान कीजिए कि आश्रम आपका अपना ही है। आपको निश्चय ही सफलता मिलेगी। आप सूर्यों के सूर्य हैं। आप जगत् की आशा हैं। आपने उत्तरदायित्वपूर्ण बाना पहना है। ईश्वरत्व का प्रस्फुटन कीजिए। पवित्रता, तैजस तथा महिमा आपकी सेवा में उपस्थित हैं। आपने अपने सारे सांसारिक बन्धनों को तोड़ डाला है। अब आप अपने मार्ग पर अबाध गति से चल सकते हैं। मिशन से चिपके रहिए तथा आदर-भाव एवं निष्कामतापूर्वक सभी गुरु जनों की सेवा कीजिए । प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। सत्य बोलने से किसी को हानि नहीं पहुँचेगी। मैं आपको आध्यात्मिक बल दूँगा। सत्य बोलने से ही सत्य की प्राप्ति होगी। धैर्य, क्षमा, विश्व-प्रेम, सेवा तथा दया के अर्जन से क्रोध का दमन कीजिए।

छह घण्टे स्वाध्याय तथा छह घण्टे ध्यान अबाध गति से चलते रहने चाहिए। यही मेरा तरीका है। भूत को भूल जाइए ठोस वर्तमान में रहिए। सभी प्रकार की काल्पनिक आशाओं का परित्याग कीजिए। यदि लोग आपको

लांछित करें, आपसे घृणा करें, आपकी हँसी उड़ायें, फिर भी शान्त रहिए। उनसे बदला न लीजिए। काम करने से पहले नित्य-प्रति 'सरमन ऑन दी माउन्ट' पढ़िए। मैं एक सन्दर्भ को नीचे दे रहा हूँ। यदि आप इसे नित्य-प्रति याद रखेंगे, तो आपको ज्ञान की प्राप्ति होगी। इसका अनवरत अभ्यास कीजिए।

अपने शत्रुओं से प्रेम कीजिए। जो आपको श्राप दें, उन्हें आशीर्वाद दीजिए। उनकी भलाई कीजिए जो आपसे घृणा करें तथा उनके लिए प्रार्थना कीजिए जो आप पर अत्याचार करें ।" इसका अभ्यास बड़ा कठिन है; फिर भी ऐसा किया जा सकता है और अवश्य करना चाहिए। महात्मा गान्धी ने इसका अभ्यास किया था। यही उनकी सफलता का रहस्य है।

आदर तथा प्रेम के साथ,

आपका विनीत बन्धु,
स्वामी शिवानन्द

निम्न प्रकृति का शोधन

प्रारम्भ में यद्यपि मैं लोगों को संन्यास-दीक्षा देने में हिचकिचाहट प्रकट करता था, फिर भी जब साधकों ने मेरे ऊपर अपने वैराग्य तथा प्रबल संकल्प-शक्ति की छाप डाली, तब मैंने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की तथा वे शीघ्र ही ईश्वरीय कार्य-क्षेत्र में संलग्न हो गये। उस समय दिव्य-जीवन-कार्य शैशवावस्था में था तथा निकट भविष्य में आध्यात्मिक पुनर्जागरण ला कर जगत् के लाखों लोगों में दिव्य प्रेरणा का संचार करने की भूमिका बाँध रहा था। मैं कभी भी जीवन के उद्देश्य तथा संन्यास के लक्ष्य को नहीं भूलता तथा बारम्बार संन्यासियों को प्रोत्साहित करता रहता हूँ, जिससे वे साधना तथा आत्म-संयम की ओर अपना ध्यान बनाये रखें।

शिवोऽहं शिवः केवलोऽहम्।' ईश्वर-आशीर्वाद प्राप्त हो! '

मुझे आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। आप भारत की ही नहीं, वरन् समस्त संसार की महिमा हैं। आपमें ईश्वरीय ज्योति, ईश्वरीय गरिमा तथा महिमा सदा विभासित होती रहें! सत्य में निवास कीजिए। सत्य का अनुभव कीजिए। सत्य का साक्षात्कार कीजिए। सत्य का प्रसार कीजिए। अपनी शक्ति की सुरक्षा कीजिए। उसे आवश्यकता पड़ने पर काम में ला कर अच्छी तरह ध्यान कीजिए। बन्द कमरे में रहिए। अधिक मिलिए-जुलिए नहीं। मित्रों की संख्या अधिक न बढ़ाइए । सच्चा मित्र एक ही पर्याप्त है। भिक्षा-भावना रख कर भिक्षा न माँगिए। आज्ञा दीजिए और आवश्यकतानुसार प्राप्त कीजिए। सारा जगत् आपका घर है। प्रकृति तथा नव-ऋद्धियाँ करबद्ध हो कर आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

इन्द्रियों का दमन कीजिए। महिलाओं से दूर रहिए। प्रखर बनिए। आलसी जनाना वेदान्ती नहीं बनिए। हर जीवकोश में, हर शब्द में आग भभकनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि आप थोड़े ही समय में आश्चर्य कर दिखायेंगे। उपनिषद् तथा गीता का स्वाध्याय कीजिए। उन्हें अच्छी तरह समझ लीजिए। इस ओर आप शून्य हैं।

आपको नियमित क्रमिक अध्ययन, ध्यान तथा जप करना चाहिए। ऐसा न सोचिए कि मैं उत्तरकाशी में बिना किसी काम के रहूँगा, तब अध्ययन करूँगा। यह भूल है। यह मूर्खता है। पवन जब चलता हो, तभी अनाज की ओसाई कर लीजिए। धारणा का अभ्यास कीजिए। ध्यान कीजिए। कुछ घण्टों तक एकान्त-वास कीजिए। नम्र बनिए। कभी भी दर्प न रखिए। सहनशीलता तथा धैर्य रखिए। बातचीत करते समय इन सद्गुणों को प्रकट

कीजिए। प्रत्येक विचार का निरीक्षण कीजिए। संन्यास कोई खेल की बात नहीं है। आपने उत्तरदायित्वपूर्ण बाना धारण किया है। क्या आप ऐसा अनुभव करते हैं? महिलाओं से दूर रहिए। उनसे हँसी-ठिठोली न कीजिए। ये सब काम के ही रूप हैं।

भीख न माँगिए। भीख माँगने की भावना से भिक्षा न माँगिए। सब-कुछ आपको प्राप्त होगा। सारा जगत् आपका घर है, ऐसा भान कीजिए। अपनी प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए। स्वार्थमयी प्रवृत्तियों को विनष्ट कीजिए। नीच प्रवृत्तियों को कुचल डालिए। अपने सभी कार्यों में शिष्ट बनिए। क्षुद्र वस्तुओं के लिए झगड़ा न कीजिए। पिशुनता तथा चुगलखोरी का परित्याग कीजिए। आसुरी प्रकृति का सुधार अनिवार्य है।

ॐ शिवोऽहम्

विषयपरायणता का अभिशाप

मैं पुनः साधना के महत्त्व तथा वैषयिक जीवन के अभिशाप से बचे रहने की आवश्यकता पर जोर देता हूँ।

गन्दगी की ओर पुनः न देखिए। स्वयं को विनष्ट न कीजिए। आध्यात्मिक मार्ग में आपने प्रचुर आनन्द एवं सुख प्राप्त किया है। योग के द्वारा प्रस्फुटित होने पर आगे आने वाली महिमाओं का कहना ही क्या है? सावधान ! सावधान !! अपनी इन्द्रियों के गुलाम न बनिए। अपने कमरे से बाहर न निकलिए। सारे कार्य-व्यापारों को बन्द कीजिए। अपने कमरे में छिप कर रहिए या तुरन्त आनन्द-कुटीर वापस लौट आइए । अन्तर्निरीक्षण कीजिए तथा ध्यान कीजिए।

यदि आप मोह का संवरण न कर सकें, तो अच्छा है कि आप तुरन्त नगर को छोड़ दें। पुस्तकों के प्रूफ की चिन्ता न करें। मैं काम की चिन्ता नहीं करता। यदि आपमें पर्याप्त बल है, तो कुछ समय और वहीं रह कर काम को समाप्त कर लीजिए । शीघ्र ऋषिकेश लौटने का प्रबन्ध कीजिए।

******

आदर्श जीवन के बिना; अन्तर्यामी तथा अन्तर्व्यापी सत्ता में विश्राम के बिना विषय-जीवन भार के समान है। यह तो पाशविक जीवन है। जगत् स्वप्न है। ब्रह्म ही ठोस सत्य है। इसे कभी न भूलें। आप आत्मा, अकर्ता तथा साक्षी हैं।

साधना आपकी नित्य की आदत बन जाये

योग के पथ पर यहाँ कुछ संकेत दिये जा रहे हैं, जिन्हें मेरे कई पत्रों से संकलित किया गया है। इनसे साधना-सम्बन्धी विषय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकेगा।

आप ध्यान, जप, स्वाध्याय तथा सेवा में नियमित रहें। ऐसा न सोचिए कि 'अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर लेने के बाद जब मैं हिमालय की गुहा में एकान्त-वास करूँगा, तब ध्यान तथा स्वाध्याय करूँगा।' कुछ घण्टों तक एकान्त में रह कर मन का अध्ययन कीजिए। उसे धीरे-धीरे एकान्त-वास के लिए तैयार कीजिए।

निष्काम सेवा

निष्काम सेवा के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं है। यदि आप मानव-जाति की सेवा के योग्य हैं, तो ईश्वर आपके लिए सारा प्रबन्ध कर देगा। कुछ लाभप्रद औषधियों को रख लीजिए तथा उन्हें गरीबों में बाँट कर उनकी सेवा कीजिए। अपनी सेवा के बदले में किसी वस्तु की अभिलाषा न रखिए। अपने ग्राम में गरीब बच्चों को शिक्षा दीजिए। चार या पाँच घरों से भिक्षा ग्रहण कर अपना निर्वाह कीजिए। एकान्त में रहिए। साधना कीजिए। मनोराज्य तथा हवाई किले बनाना बन्द कीजिए। यह शान्ति का शत्रु है। अपनी योग्यता, क्षमता तथा साधना के अनुसार उपयुक्त मानसिक भाव के साथ यथा-सम्भव सेवा कीजिए।

प्राणायाम से उपद्रव

मुझे बहुत से साधकों द्वारा ऐसे उपद्रवों का विवरण प्राप्त हुआ है। वे प्राणायाम तथा क्रियायोग द्वारा बलपूर्वक कुण्डलिनी जाग्रत करना चाहते हैं। मैं उनके अति-उत्साह तथा अधूरे ज्ञान पर तरस खाता हूँ। स्वल्प भोजन अथवा उसका पूर्णतः त्याग आपको किंचिन्मात्र भी सहायक नहीं होगा। नियमित दैनिक अभ्यास के द्वारा क्षेत्र को अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। उन्नत अवस्थाओं में आपको उन व्यक्तियों के वैयक्तिक पथ-प्रदर्शन तथा संरक्षण की आवश्यकता है, जिनको योग-मार्ग में सिद्धि प्राप्त हो गयी है। हृदय की शुद्धता, सन्मति, ग्रन्थों का सम्यक् ज्ञान, अनुकूल वातावरण तथा आध्यात्मिक स्पन्दनों से भरा हुआ स्थान- ये सब आपकी सफलता के लिए बहुत आवश्यक हैं। जल्दबाजी न कीजिए। अधीर न बनिए। एकांगी विकास आपको सहायता नहीं देगा। अत्यधिक उपवास के द्वारा स्वास्थ्य को न बिगाड़िए । इससे आपका शरीर दुर्बल हो जायेगा। प्रचुर मात्रा में शक्तिवर्धक, सुपाच्य तथा पौष्टिक अन्न, फल तथा दूध का आहार लीजिए। कुछ महीनों तक धीरे-धीरे श्वास लीजिए तथा छोड़िए । कुम्भक न कीजिए। कुछ आगे बढ़ने पर गर्मी के दिनों में किसी ठण्डे स्थान में चले जाइए तथा प्राणायाम की तीन बैठकें रखिए। पूरक, कुम्भक तथा रेचक में १ः ४ : २ का अनुपात रखिए। इससे अवर्णनीय लाभ होता है। ऊँचे साधकों को इससे रंच मात्र भी हानि नहीं होती।

उदासी तथा आलस्य को दूर कीजिए

खुली वायु में दौड़िए। धीमा प्राणायाम कीजिए। ॐ का जप कीजिए। भक्तिपूर्वक गाइए। भावपूर्वक नृत्य कीजिए। शीघ्र ही उदासी दूर हो जायेगी। आप आनन्द-स्वरूप हैं-उदासी तथा आलस्य कहाँ? वे तो मानसिक कल्पनाएँ ही हैं। मौन रहिए। मौन से अधिक लाभ उठाइए। कुछ बादाम जल में रात-भर भिगो कर रखिए। प्रातः मिश्री के साथ सेवन कीजिए। यह साधकों के लिए मेधावर्धक टानिक है। शिर में आँवला-तेल का प्रयोग कीजिए। हक्सले सिरप का भी सेवन कीजिए।

जब आप उत्तेजित हों

जप तथा साधना को एक दिन के लिए भी बन्द न कीजिए। यथा-व्यवस्था के गुण का विकास कीजिए। अपमान तथा नुकसान सहिए। छोटी-छोटी बातों को भूल जाने की आदत डालिए। लोगों के साथ निपुणतापूर्वक रहिए। सभी को भजन-कीर्तन का प्रशिक्षण दीजिए। आप जहाँ भी जायें, वहीं आध्यात्मिक स्पन्दनों का निर्माण कीजिए। तब आप शान्ति, सुख, आनन्द तथा समृद्धि प्राप्त करेंगे। सभी चेहरों पर आनन्द छा जायेगा। यही शान्ति

का मार्ग है। उत्तेजित अथवा क्षुब्ध होने पर जप कीजिए अथवा कुछ समय के लिए उस स्थान को छोड़ दीजिए। सभी से प्रेम कीजिए। सभी की सेवा कीजिए।

योग में अति से बचिए

योगाभ्यास उतना ही कीजिए, जितना आप आसानी से कर सकते हैं। अति से बचिए। अधिक थकावट न लाइए। विदेशी लोगों के लिए पद्मासन तथा शीर्षासन बहुत कठिन लगते हैं। प्रार्थना तथा ध्यान के लिए आप कोई भी सुखप्रद आसन अथवा शारीरिक स्थिति रख सकते हैं। आप एक अच्छा आसन चुन लीजिए, जिसमें सरलतापूर्वक अधिक समय तक बैठ सकें। आपकी गर्दन तथा रीढ़ एक-सीध में होनी चाहिए। आँखें बन्द कर लीजिए। धीरे-धीर श्वास लीजिए तथा छोड़िए । ॐ ॐ ॐ मन्त्र का मानसिक जप कीजिए तथा भगवान् के दिव्य गुणों पर ध्यान कीजिए। अब आप मौन-ध्यान में प्रवेश करेंगे। आप महान् शान्ति तथा आन्तरिक आध्यात्मिक बल प्राप्त करेंगे।

योग क्या है ?

छह घण्टे तक आसन में बैठना या हृदय की गति को रोक देना या एक सप्ताह या माह तक भूमि के भीतर गड़े रहना योग नहीं है। ये सब शारीरिक तमाशे हैं। योग व्यष्टि-संकल्प को विश्वात्म-संकल्प से संयोजित करने के विज्ञान को सिखलाता है। योग मनुष्य की पाशवी प्रकृति को रूपान्तरित कर शक्ति तथा वीर्य की अभिवृद्धि करता है और दीर्घायु एवं सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करता है। धारणा-शक्ति की वृद्धि का प्रयास कीजिए। मन की एकाग्रता के लिए जप सहायक है।

द्वादश अध्याय

आध्यात्मिक अनुभव

नव-जीवन का अवतरण

मैं विषय-सुखों के इस भ्रामक जीवन से थक चुका था।
मैं इस शरीर रूपी बन्दीगृह से ऊब चुका था।
मैंने महात्माओं के साथ सत्संग किया
तथा उनके अमृतमय उपदेशों का पालन किया।
मैं राग-द्वेष के गहन अरण्य का अतिक्रमण किया।
मैंने भले-बुरे जगत् से अति-दूर विचरण किया।
मैं परम मौन की सीमा तक जा पहुँचा तथा
मैंने अन्तरात्मा के ऐश्वर्य के दर्शन किये।
अब मेरे सारे शोक दूर हो गये हैं।
मेरा हृदय आनन्द से आप्लावित हो रहा है।

मेरी आत्मा में शान्ति का समावेश हुआ है।
मैं अचानक अपने जीवन से ऊपर उठ गया तथा
मुझमें नव-जीवन का अवतरण हुआ।
मैंने सत्य के अन्तर्जगत् का अनुभव किया।
उस अदृश्य से मेरा हृदय एवं आत्मा परिपूर्ण हो चला।
मैंने अमिट ज्योति के प्रवाह में स्नान किया तथा
'मैं ही ज्योति हूँ, इसका साक्षात्कार किया।

प्रारम्भिक आध्यात्मिक अनुभव

अधिकाधिक वैराग्य तथा विवेक,
अधिकाधिक मुमुक्षुत्व,
शान्ति, प्रसन्नता, सन्तोष,
निर्भयता तथा मन का समत्व,
नेत्रों से दीप्ति, शरीर में सुगन्ध,
वर्ण-प्रसाद, स्वर-सौष्ठव-मीठी एवं शक्तिशाली बोली,
अल्प मूत्र तथा पुरीष,
सुन्दर स्वास्थ्य तथा लघुत्वम्,
रोग, आलस्य तथा विषाद से मुक्ति,
शरीर की लघुता, मन की तीव्रता,
शक्तिशाली जठराग्नि,
बहुत देर तक ध्यान करने की इच्छा,
सांसारिक संगों तथा वाद-विवादों में अरुचि,
ईश्वर की उपस्थिति का सर्वत्र भान,
सारे प्राणियों के प्रति प्रेम,
ऐसा अनुभव कि सारे रूप स्वयं ईश्वर के हैं,
यह जगत् स्वयं ईश्वर ही है।

निन्दा तथा अपमान करने वालों के प्रति भी घृणा का अभाव,
अपमान तथा हानि सहने की क्षमता,
विपत्तियों एवं बाधाओं का सामना करने की क्षमता,
ये सब हैं कुछ प्रारम्भिक आध्यात्मिक अनुभव
जिनसे पता चलता है कि
आप स्थिर रूप से आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ रहे हैं।

ध्यान में

उजली ज्योतियों, रंगीन ज्योतियों के गोले, सूर्य, तारे दिखायी देंगे।
दिव्य गन्ध, दिव्य रस, स्वप्न में भगवान् के दर्शन
असाधारण अतिमानवी अनुभव।

मानव-रूप में ईश्वर-दर्शन,
कभी-कभी ब्राह्मण के रूप में,
ईश्वर से बातें करना;
ये सब प्रारम्भिक आध्यात्मिक अनुभव हैं।
तब विश्वात्म-चैतन्य तथा सविकल्प-समाधि की बारी आती है,
जिसका अर्जुन ने अनुभव किया था।
अन्ततः साधक निर्विकल्प-समाधि में प्रवेश करता है,
जहाँ न तो द्रष्टा है, न दृश्य,
जहाँ मनुष्य कुछ भी देखता नहीं, कुछ भी सुनता नहीं
वह नित्य वस्तु से एकाकार हो जाता है।

मैंने जीवन-क्रीड़ा में विजय पायी

प्रभु तथा सद्गुरु की कृपा से मैं असंग तथा मुक्त हूँ।
शंका तथा भ्रम दूर हो चुके हैं।
मैं मुक्त तथा सदा सुखी हूँ।
मैं भय से मुक्त हूँ,
मैं अब अद्वैत अवस्था में विश्राम कर रहा हूँ।
द्वैत से भय होता है।
मैं ब्रह्म-पद से उन्मत्त हूँ।
मैंने पूर्णता तथा स्वतन्त्रता पायी है।
मैं शुद्ध चैतन्य में निवास करता हूँ।
मैंने जीवन-क्रीड़ा में विजय पायी है।
मैंने विजय पायी है। मैंने विजय पायी है।

उसी में मैं अपना सर्वस्व पाता हूँ

अन्ततः उसकी कृपा का अवतरण हुआ,
मैंने उसको देखा, एकटक देखा,
उस विस्मयकारक प्रभु के दर्शन में मैं सुध-बुध भूल गया।
ईश्वरीय कृपा से मेरा हृदय-प्याला छलछला उठा।
भाव के हर्षातिरेक में मैं झूम उठा,
उसकी इच्छा में ही मेरी शान्ति है।
उसका नाम ही शान्ति का धाम है।
उसी में मैं अपना सर्वस्व पाता हूँ।
उसी के हृदय में सारा ज्ञान भरा हुआ है।
उसी में यह सारा जगत् सृजन तथा विलय प्राप्त करता है।
वह सभी दृश्यों का परम आधार है।
वही पवित्र प्रभु है, ज्ञान में पूर्ण,
जगत् का कारण, मुक्तिप्रदाता है।

आनन्द-सागर में

हे महादेव! हे केशव! आपकी कृपा के खड्ग से
मैंने अपने सारे बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर दिया है।
मैं मुक्त हूँ, मैं सुखी हूँ।
सारी कामनाएँ विलुप्त हो चुकी हैं।
अब मुझमें आपके चरण-कमल को छोड़ अन्य कोई कामना नहीं।
मैंने अपने सारे विचारों को,
आपमें ही विलीन कर दिया है, हे नारायण!
मैंने आपके महत् दर्शन को प्राप्त किया।
मैं भाव-समाधि में खो चला,
मैं तत्क्षण ही रूपान्तरित हो गया।
मैं ईश्वरीय चैतन्य के आनन्द-सागर में डूब गया था।
जय हो! जय हो! हे मेरे प्रभु विष्णु !

मैं अमर आत्मा हूँ

एक नित्य असीम वस्तु ही है, जीव उससे एक है।
दुःख असत्य है, यह रह नहीं सकता,
आनन्द सत्य है, वह मर नहीं सकता।
मन असत्य है, यह रह नहीं सकता।
आत्मा सत्य है, यह मर नहीं सकता।
आत्म-ज्ञान से मुक्ति मिलती है।
पूर्णता, अमृतत्व तथा आनन्द ही मुक्ति है।
आत्मा की अपरोक्षानुभूति ही मुक्ति है।
मैं न तो शरीर हूँ और न मन ही हूँ;
यह सारा जगत् मेरा शरीर है,
यह सारा जगत् मेरा धाम है;
कुछ भी नहीं है,
कुछ भी मेरा नहीं है,
मैं तो अमर आत्मा हूँ।

भाषा-रहित कटिबन्ध

पूर्ण नाम-रहित, रूप-रहित शून्य में,
असीम आनन्द-विस्तार में,
पदार्थ-रहित, मन-रहित, आनन्द के धाम में,
काल-रहित, आकाश-रहित, विचार-रहित साम्राज्य में,

मधुर समस्वरता के मनसातीत धाम में,
मैं परम प्रकाश से युक्त हो गया।
यह विचार कि हम एक हैं या दो-विलीन हो गया।
मैंने सदा के लिए जन्म के सागर को पार कर दिया,
यह सब ईश्वर की कृपा से ही हुआ।
हाँ, उसी प्रभु की कृपा से, जिसने वृन्दावन में सुमधुर नृत्य किया,
जिसने गोपों की रक्षा के लिए छाते के समान गोवर्धन को उठा लिया।

मैं वही बन चुका हूँ

माया-निर्मित जगत् अब विलुप्त हो चला है
मन पूर्णतः विनष्ट हो चुका है,
अहंकार चूर्ण-चूर्ण हो चुका है,
व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के व्यवधान विलीन हो चुके हैं।
नाम और रूप अदृश्य हो चुके हैं।
सभी वैशिष्ट्य और भेद विगलित हो गये हैं।
पुराना जीवत्व पूर्णतः ब्रह्म से एक हो चुका है।
सर्वत्र सत्य, ज्ञान तथा आनन्द का सागर उमड़ रहा है।
ब्रह्म ही एकमेव विभासित हो रहा है।
सर्वत्र एक शाश्वत आनन्द-सागर परिप्लावित हो रहा है।
मैं वही बन चुका हूँ, मैं वही बन चुका हूँ।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।

भूमा-अनुभव

मैं असीम आनन्द में विलीन हो चला।
मैंने अमरानन्द-सागर में विहार किया।
मैंने असीम शान्ति के समुद्र में सन्तरण किया।
अहंकार विलीन हुआ, विचार विलीन हुए।
बुद्धि-व्यापार बन्द हुआ, इन्द्रियाँ विलुप्त हुई।
मैं जगत् के लिए प्रसुप्त हो गया।
मैंने सर्वत्र स्वयं को ही देखा; वह अनुभव एकरस था।
न तो अन्तर न बाह्य था; न तो 'यह' न 'वह' था।
न तो 'वह', 'तुम' और न 'मैं' था।
न तो काल न देश था; न तो विषय न विषयी था।
न तो ज्ञाता, न ज्ञान, न ज्ञेय था।
उस अतीत अनुभव का कैसे वर्णन किया जाये ?

भाषा सीमित है, शब्द शक्ति-रहित हैं

स्वयं इसका साक्षात्कार कर मुक्त बन जाइए।

रहस्यमय अनुभव

ब्रह्म अथवा नित्य वस्तु -
मधु, मुरब्बा, मिश्री, रसगुल्ला या लड्डू से अधिक, बहुत अधिक मधुर है।
मैंने अव्यय ब्रह्म पर ध्यान किया
मैंने वह अवस्था पायी, जो सीमा से परे है।
मुझमें वास्तविक ज्योति विभासित हो चली
अविद्या अथवा अज्ञान पूर्णतः विलुप्त हो चला
द्वार पूर्णतः बन्द थे, इन्द्रियाँ सिमट चुकी थीं
श्वास तथा मन अपने उद्गम में विलीन हो चुके
मैं परम ज्योति से एक हो गया
भाषा से परे रहस्यमय है यह अनुभव सच्चिदानन्दस्वरूपोऽहम् ।

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्

मैंने जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का साक्षात्कार किया है।
सच्चिदानन्द मेरा स्वरूप है
मेरा मन सारे बाह्य विषयों से हट चला है
मैं पूर्णतः ईश्वरीय मद में उन्मत्त हूँ
सारे शोक, दुःख तथा भय विलुप्त हो चले हैं।
मैं सदा शान्त तथा प्रसन्न हूँ
मैं सत्य, शुद्ध, चैतन्य तथा आनन्द हूँ।
मैं ईश्वरीय ज्योति के रूप में विभासित हूँ।
सभी प्राणियों में मैं अमरानन्द का आस्वादन कर रहा हूँ।
मैंने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया है।
वही ब्रह्म मैं हूँ।
वह ब्रह्म जो सच्चिदानन्द है, जो अन्तर्वासी तथा अन्तर्यामी है,
जो वेदों की योनि है, जो जगत् का स्रष्टा है,
जो सबका आधार है, जो बुद्धि को प्रकाश देता है,
जो सभी नाम-रूपों में छिपा हुआ है,
जो ऋषियों का उपास्य है, जिसको वेद पुकारते हैं,
जिसको योगी जन समाधि में प्राप्त करना चाहते हैं,
जो इन्द्र तथा अग्नि के लिए आतंक है,
जो संयमित योगी के लिए मधुर है।
वही ब्रह्म मैं हूँ।
शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ।

समाधि की अवस्था

कितना आनन्द, कितना सुख,
सारी कामनाएँ परिपूर्ण हो चुकीं, सब-कुछ प्राप्त हो चुका,
मैं अमर, मृत्यु-रहित हूँ, मैं नित्य चैतन्य हूँ,
मैं महान् और सर्वोच्च हूँ, यह सब मोह ही है,
मोक्ष ही सर्वत्र है, यही जानने योग्य है,
यही सभी द्वारा अनुभव करने योग्य है।
अहंकार अब विलीन हो चुका है।
ज्ञान की अग्नि में वासनाएँ विदग्ध हो चुकी हैं।
मनोनाश हो चुका है, सारे भेद विनष्ट हो चुके हैं,
न तो 'मैं' है और न 'तुम', सब ब्रह्म ही है।
अखण्ड एकरस आनन्द ही है, यह अनुभव अमिट है।
यह अवस्था अनिर्वचनीय है।
स्वयं समाधि में इसका अनुभव कीजिए।

गुरु-कृपा से

मैं अपने स्वरूप को जानता हूँ,
मैंने परिपूर्णता की चोटी को प्राप्त किया है,
मैं शुद्ध आत्मा हूँ।
मेरी सारी कामनाएँ परितृप्त हो चुकी हैं,
मैं आप्त-काम हूँ, मैंने सब-कुछ प्राप्त कर लिया है,
मैंने सब काम कर लिया है, मुझे अब और कुछ भी जानना नहीं है,
वेदों से अब मुझे कुछ भी सीखना नहीं,
स्मृतियों से अब कुछ भी उपदेश ग्रहण करना नहीं,
इस जगत् से अब कोई आकर्षण नहीं,
माया अब लज्जित हो कर छिप चली है,
मैं अब उसकी चालों से अवगत हूँ,
वह मेरे सामने आने में शरमाती है।
यह सब ईश्वर-कृपा तथा गुरु-कृपा से ही है,
उसने मुझे अपने जैसा ही बना लिया है,
गुरु को नमस्कार, गुरु को श्रद्धांजलि!

हंसः सोऽहम्

यह लक्ष्य काल एवं देश-रहित है
यह धाम दुःख-रहित तथा शोक-रहित है।
यह धाम सुखमय एवं शान्तिमय है

यह धाम अव्यय तथा असीम है।
मैं जानता हूँ 'मैं वही हूँ।'
मुझमें न तो शरीर, मन न इन्द्रियाँ हैं
मुझमें न तो परिवर्तन, बुद्धि और न मृत्यु है
मैं अमर सर्वव्यापक ब्रह्म हूँ।
मुझे पाप तथा पुण्य छू नहीं सकते
मुझे सुख तथा दुःख प्रभावित नहीं कर सकते
मुझे राग तथा द्वेष पंकिल नहीं बना सकते
मैं परम सत्य, ज्ञान तथा आनन्द हूँ।
मेरे न तो शत्रु हैं न मित्र
मेरे न तो माता-पिता हैं और न सगे-सम्बन्धी
मेरा न तो घर है न देश
मैं तो वही हूँ। मैं वही हूँ।
मैंने कभी जन्म नहीं लिया और न कभी मरूँगा ही।
सदा स्थित हूँ, मैं सर्वत्र हूँ;
मुझे न तो मृत्यु से भय है और न समाज की समालोचना का ही।
मैं शिव हूँ, आनन्द-स्वरूप एवं प्रज्ञानघन हूँ,
चिदानन्द-रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।

त्रयोदश अध्याय

दर्शन तथा विनोद

निम्नांकित सन्दर्भ मेरे पत्रों से लिये गये हैं। इनसे पाठक यह पता लगा सकेंगे कि मैं किस प्रकार विनोदी स्वभाव का हूँ; परन्तु मेरे विनोद में गम्भीर दार्शनिकता की झलक है। मैं दूसरों के दोषों के प्रति अति-उदार तथा सहनशील हूँ। इन विनोदपूर्ण उक्तियों में सभी के स्वभाव का गम्भीर अध्ययन निहित है।

साधकों को भाषण देने का प्रशिक्षण

"आपको कम-से-कम पाँच मिनट अँगरेजी तथा हिन्दी में भाषण देना होगा और चाहे आपका शरीर मुड़े या हिले नहीं या हिलने से इनकार करे, आपको कीर्तन के साथ नृत्य भी करना होगा। यदि भाषण देने में कठिनाई हो, तो कृपया मेरी पुस्तकों से कुछ पंक्तियों को ही याद कर लीजिए। यदि याद करना कठिन हो, तो किसी पृष्ठ पर लिख कर पढ़ डालिए। यदि आप बच्चे की भाँति अपना हठ दिखलायेंगे, तो मेरे पास आपको बलपूर्वक मंच पर लाने के सिवा अन्य कोई साधन नहीं है। सर्दियों में इस कुश्तीबाजी के लिए अवकाश न दीजिए।"

प्रारम्भावस्था में इस प्रकार बाध्य किये जाने के कारण बहुत से साधक अच्छे व्याख्याता तथा कीर्तन-प्रेमी बन चुके हैं। मैं हर व्यक्ति को उग्र वक्ता बनाना चाहता हूँ। सभी अपने विचारों को व्यक्त करना सीखें।

व्यावसायिक व्यक्तियों का मार्ग

"समाराधन या ब्राह्मण-भोजन के समय दश बजे प्रातः पत्ते बिछा दिये जाने हैं; परन्तु शाम को चार बजे भोजन परसा जाता है। 'योग-साधना' के साथ यही मामला है। पाँच सप्ताह से विज्ञापन निकल रहा है; परन्तु उस पुस्तक की गन्ध भी मुझे मालूम नहीं। वृक्ष का पहला फल ईश्वर को अर्पित करते हैं। प्रथम बँधी हुई प्रति मेरे पास रजिस्टर्ड पोस्ट से पहुँचनी चाहिए; परन्तु वी. पी. पी. ऑर्डर को पूर्ण रूप से चुकाने पर ही मेरे पास शेष बची हुई प्रति को भेजा जाता है। यही व्यावसायिक व्यक्तियों का ढंग है।"

मजबूत पैकिंग के प्रति जिसमें मोटी कीलें लगायी गयी थीं

"आपका पार्सल अच्छी हालत में पहुँचा। ब्रह्म-पैकिंग किया था, जिसमें ब्रह्मी-स्क्रू के साथ ब्रह्म-निष्ठा थी। हथौड़े से पीटने पर भी उसको खोला नहीं जा सका । अन्त में उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला गया। पार्सल के ब्राह्मिक पैक करने वाले को धन्यवाद। पुस्तकें अच्छी दशा में प्राप्त हुई।"

जब प्रकाशक गण मुख्य बातों को छोड़ देते हैं

"मैंने आपको पूरा अधिकार दे दिया है कि जिस भाषा को भी चाहें आप अपने लम्बे तेज उस्तरे से छाँट कर निकाल सकते हैं, जिससे पुस्तक प्रेरणात्मक तथा भव्य बन सके; परन्तु प्रार्थना है कि छोटी-सी शिखा तो जरूर छोड़ दिया कीजिए। यही तो नारदपरिव्राजकोपनिषद् कहती है। मेरे लेखों से एक भी आवश्यक शब्द को न हटाइए। यदि पुनरावत्ति हो तो होने दीजिए।"

पुस्तक ही पाण्डुलिपि के विषय में

"मैं जानता हूँ कि 'राजयोग' पुस्तक के समाप्त होते ही आप 'नमस्कार' कहेंगे। आप 'भक्तियोग' नहीं ले सकेंगे। जिस प्रकार आपके कानों में संकीर्तन नहीं घुस सकता, उसी तरह यह 'भक्तियोग' भी आपको अधिक आकृष्ट नहीं करता। मैं जानता हूँ कि आप इस पुस्तक के प्रकाशन-कार्य को नहीं लेंगे। कृपया आते समय सावधानीपूर्वक उसकी पाण्डुलिपि लेते आइए। मैं उत्तरी भारत के किसी दूसरे प्रेस में उसे दूँगा।"

आकर्षक विज्ञापन के प्रति

'प्रेक्टिस ऑफ योग' के द्वितीय भाग की पुस्तक के अन्त में अधिक जोरदार विज्ञापन नहीं है। वह मामूली-सा है। इससे पूर्ण रूप से पुस्तक का प्रदर्शन नहीं हो पाता। आपने 'योगासन', 'कुण्डलिनी योग' इत्यादि के लिए पहले बहुत अच्छा लिखा था। अब ऐसा क्यों? शायद थर्मस फ्लास्क खाली था।"

कॉफी के प्रति

"ऋषिकेश की शरद् ऋतु सभी को आमन्त्रित कर रही है। आप ठण्ढी हवा का भी आनन्द लेंगे। स्टोव जो अब तक सोया पड़ा था, अब अपने मुँह को रेलवे स्टेशन की ओर फिरा कर आपके सहर्ष स्वागत के लिए प्रतीक्षा कर रहा है। जो व्यक्ति शरद् ऋतु में बत्ती तथा स्टोव का त्याग करता है, वह तो स्वयंप्रकाश परब्रह्म- सारी ऋतुओं का तथा सारे नाम-रूपों का अधिष्ठान ही है। वह कभी पीता नहीं और न बोलता ही है। वह असंग है। वह सदा साक्षी है। उसकी स्थिति का भान कीजिए।"

याद दिलाने का तरीका

"पोस्टकार्ड लिख कर कृपया मुझे सूचित कीजिए, 'हाँ, मैंने पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें भेज दी हैं।' अथवा कुछ सांकेतिक शब्द ही लिखिए। इससे समय तथा शक्ति की बहुत बचत होगी। इससे आपके गम्भीर मौन में बाधा न पड़ेगी। यह 'हू-हू' मौन का एक गम्भीर प्रकार है।"

साधकों की देख-रेख

"पूर्ण पर विशेष ध्यान दीजिए। उनके प्रति मेरा आदर भाव। वे सरल, शान्त तथा शिष्ट हैं। वे कुनैन खाये हुए व्यक्ति की बिगड़ी मुखाकृति की तरह अपना चेहरा न बनायें।"

औपचारिक आमन्त्रण

"वहाँ व्यवस्था करके कृपया ऋषिकेश आ जाइए। जन्म-दिवस का आमन्त्रण केवल सूचना के लिए ही है, आने के लिए नहीं।"

काजू के क्षति-ग्रस्त पार्सल के प्रति

"काजू का पार्सल मिला क्षति-ग्रस्त हालत में। गरमी के दिन में मिश्री के गल जाने से काजू मुलायम हो गये। स्वामी ज्ञानानन्द के लिए तो वे बहुत ही अच्छे हैं; परन्तु मेरे दाँत तो मजबूत एवं स्वस्थ हैं। भविष्य में काजू के साथ मिश्री न भेजिए।"

ऋण के होते हुए भी धनी

"प्रतिदिन आश्रम में नये साधक आते हैं। सारे देशों से हजारों साधक आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन के लिए मेरे पास पत्र लिखते हैं तथा मैं सभी पत्रों का तुरन्त उत्तर लिखने में देरी नहीं करता हूँ। कुछ कुटीरों का निर्माण हो रहा है। सभी दिशाओं में काम बढ़ रहा है। आश्रम में एक गाय आ रही है। आप अच्छा दूध पी सकते हैं। हम लोग ऋण के होते हुए भी धनी बनते जा रहे हैं।"

दिमागी काम करने वालों के लिए आदर्श टानिक

(कॉफी की आदत के प्रति आक्षेप)

"बादाम तथा हक्सले सिरप का सेवन कीजिए। अपने शिर में बादाम-तेल या आमला-तेल लगाइए। यह दिमागी काम करने वालों के लिए बहुत ही लाभकर है। भोजन में किसी पथ्य की जरूरत नहीं है। आप उसी परिमाण में या और भी अधिक कॉफी पी सकते हैं।"

मेरे आदरणीय अतिथि

"सारे पत्र तथा कॉफी के पार्सल मिले। कॉफी के टिन के प्रथम आदणीय अतिथि हुए स्वामी ओंकार जो रेलवे स्टेशन से उस बण्डल को लाये थे तथा दूसरे थे श्री स्वामी पूर्ण जिन्होंने कॉफी तैयार की। सम्भवतः नाई बल्ला मेरे दूसरे अतिथि होंगे।"

पैदल चलने में 'दुर्बलता' के प्रति

"यदि सब-कुछ ठीक रहा, तो दिव्य जीवन संघ आपको संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों के दल का नेता बना कर प्रचार, कीर्तन तथा प्रवचन के लिए भेजेगा। इस प्रकार भी आपको प्रतिदिन १२ मील पैदल तो चलना ही पड़ेगा।"

विरक्त महात्माओं के तरीके

"आपके मित्र स्वर्गाश्रम के उस विरक्त मौनी लड़के ने, जिसके पास एक अँगोछा ही था, एक पाउण्ड 'स्नफ' भेजने के लिए मेरे द्वारा आपसे प्रार्थना की है। यह भी एक प्रकार का वैराग्य है। उसकी नाक बारम्बार स्नफ के प्रयोग से मशीनगन के समान बन गयी है। स्नफ के प्रयोग के प्रति वह अच्छे-अच्छे तर्क भी करता है। आप एक छोटा टिन भेज सकते हैं। उस विरक्त महात्मा के प्रति यह आपका दान रहेगा।"

स्नफ के प्रति दर्शन

स्नफ (नसवार) पार्सल मिला जिसको निम्नांकित लोगों में बाँटा गया -

(१) मुख्य स्नफर	श्री 'क'
(२) गुरु स्नफर	श्री 'ख'
(३) सनातन स्नफर पुराना स्नफर	श्री 'ग'
(४) महा स्नफर	स्वर्गाश्रम के श्री मौनी तथा त्यागी

आपको पाप तथा पुण्य-दोनों ही मिलेंगे। मुझे भी पुण्य का कुछ हिस्सा मिलेगा; क्योंकि उनके कष्ट को दूर किया गया है। पाप भी मिलेगा; क्योंकि उनकी आदत को बनाये रखने में हमने सहायता दी है। यदि हम उन्हें 'स्नफ' न दें, तो उनकी आदत दूर हो जायेगी; परन्तु 'अहं ब्रह्मास्मि' वाले लोग पाप तथा पुण्य-दोनों से ही दूर हैं; अतः आप अपने स्वरूप को जान कर पाप-पुण्य से बच गये।

।। हरि ॐ तत्सत् ।।